88

[illegible] द्विवेदी '[illegible]'

सती सावित्री

लेखक
अध्यापक हरिप्रसाद द्विवेदी 'श्रीहरि'

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

रंगीन जिल्द ॥=)] संवत १९८६ [सादी ॥=)

राजसंस्करण सजिल्द १=)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

इस समय भारत उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है; किंतु स्त्री-शिक्षा की कमी होने से इस पथ में कई बाधाएँ आती हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि स्त्री-शिक्षा बहुधा मामूली पढ़ने-लिखने तक ही परिमित है। जब हमारी बालिकाएँ शालाओं में पढ़ती हैं, तब उनको कोई छोटी-छोटी पुस्तकें उपहार में नहीं दी जातीं, जो अपनी पाठशाला छोड़ने पर उन्हें पढ़ सकें।

इसका कारण भी है। छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं के पढ़ने योग्य अभी तक बहुत कम पुस्तकें लिखी गई हैं। वे भी इस ढंग से नहीं लिखी गईं कि कम पढ़ी-लिखी पुत्रियाँ सहज ही में पढ़ सकें। कई पुस्तकें तो उपन्यास हैं, जो केवल अपनी कल्पना से ही तैयार की जाती हैं। ऐसी पुस्तकों में कुछ शिक्षा की झलक के सिवा मनोरंजन की मात्रा अधिक दृष्टिगत होती है। दूसरी कई पुस्तकें ऐसी हैं, जिनमें कई ललनाओं को देवी-रूप मानकर उनका वर्णन किया गया है। इस प्रकार की पुस्तकों के पढ़ने से यह भावना अवश्य ही जाग्रत् हो उठती है कि यदि वे देवी हैं, और

उन्होंने ऐसा अलौकिक काम किया है, तो उसमें उनकी क्या तारीफ़ है। देवी तथा देवतों को तो कोई काम कठिन ही नहीं। यदि वे ही जीवन-चरित्र एक मामूली कन्या किंवा बालक की दृष्टि से लिखे जायँ, तो उनके पढ़ने से वे बालकों तथा बालिकाओं के कोमल हृदय पर अवश्य ही विशेष रूप से अपना प्रभाव डाल सकेंगे। यह मेरा अनुमान है। इसी ध्येय को सामने रखकर यह 'सती सावित्री' नाम की पुस्तक रची गई है।

इस पुस्तक की भाषा सरल, सरस, मधुर और महावरे-दार ऐसी लिखी गई है, जो हमेशा बोलचाल में आती है। इसे कम पढ़ी-लिखी बालिकाएँ भी अच्छी तरह समझ सकती हैं। इस पुस्तक के लेखक एक सुयोग्य हिंदी-शिक्षक हैं। आशा है, यदि हमारे हिंदी पढ़े-लिखे भाई इस छोटी-सी पुस्तक का आदर करेंगे, तो हमारे लेखक महाशय अनेक इसी तरह की शिक्षाप्रद पुस्तकें लिखकर देश की उन्नति में अपना हाथ बँटावेंगे।

हुसेनबख़्श "विशारद"



सती सावित्री

पहला अध्याय

सत्ययुग में, मद्रदेश में, अश्वपति राजा राज्य करते थे। इनके राज्य में जो लोग बसते थे, वे सब सच्चरित्र थे। सब लोग बड़े रूपवान् और गुणवान् थे। सत्यता तो उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। दरिद्रता का नाम तक नहीं था। सारी प्रजा धन-धान्य से परिपूर्ण थी। चोरी और डकैती को लोग जानते तक न थे। जो बात ये लोग अपने मुँह से एक बार कह देते थे, उसे जन्म-भर निबाहते थे। राजा के राज्य-भर में कोई भी एक दूसरे का शत्रु नहीं था। दया और ममता सब लोगों में बास करती थी। उस समय शेर और बकरी एक ही घाट पानी पीते थे। क्या राजा क्या रंक, सब समान दृष्टि से देखे जाते थे। जंगलों में जहाँ-तहाँ ऋषि-मुनि तपस्या करते थे। उनकी वेदी से निकला हुआ धुआँ आकाश-मंडल में छाया हुआ शोभायमान दिखाई देता था। लोग परिश्रमी और अपने पैरों पर खड़े रहते थे। कोई भी एक दूसरे का मुँह नहीं ताकता था। खेती प्रतिदिन उन्नति पर थी। खेत सदा हरे-भरे रहते थे।

इस समय लोगों के सदाचार के कारण अन्न भी खूब पैदा होता था। अश्वपति-जैसे राजा को पाकर राज्य के लोग सब तरह सुखी थे। प्रत्येक घर में सदा भोजन से अधिक सामग्री रहती थी। महाराज का महल तो इंद्रपुरी को भी मोहित करता था। राजा के सब नौकर आज्ञाकारी और स्वामिभक्त थे। रानी भी अपनी प्रजा को पुत्रों के समान मानती थीं। कोई भिक्षुक राजा के घर से विमुख होकर नहीं जाने पाता था। राज-सभा में पंडितों और विद्वानों का विशेष रूप से आदर-सत्कार होता था।

इतना सुख और ऐश्वर्य होते हुए भी किसी भी मनुष्य के मुख पर प्रसन्नता न थी। सब लोग चिंता-युक्त दिखाई देते थे। कारण, राजा संतानहीन थे। सब लोग यही सोचा करते थे कि जिस समय हमारे ऐसे प्रजावत्सल राजा का स्वर्गा-रोहण होगा, तब न-जाने कौन दुष्ट राजा हम लोगों पर अपना शासन करेगा। यदि किसी कंगाल के कोई संतान न हो, तो वह भी दुखी रहता है। पर जब एक ऐसा धर्मात्मा राजा संतानहीन है, तब लोगों की चिंता का क्या ठिकाना। यद्यपि राजा को किसी भी बात का दुःख नहीं था, राज्य अच्छी तरह से भरा-पुरा था, प्रजा राजभक्त थी; किंतु संतान न होने का दुःख राजा को २४ घंटे दबाए रहता था। पुत्र-रत्न के विना

राजा को सारा संसार अंधकारमय दिखाई देता था। पुत्र की चिंतारूपी अग्नि राजा के हृदय को भस्म किए डालती थी।

राजा को भी धीरे-धीरे बुढ़ापे ने आ घेरा। उनके कूच का डंका बजने का समय समीप आ गया। बुढ़ापे को आया देख वह अधीर हो उठे। अंत में कोई उपाय न देख राजा ने एक बड़ी भारी सभा की। इस सभा में देश-भर के विद्वान् और ऋषि-मुनि बुलाए। जब पूरी सभा भर चुकी, तब राजा सभा में आकर बोले—"हमने आप लोगों को एक परमावश्यक विषय सोचने के लिये बुलाया है। आप लोग मेरे इस काम को क्षमा करेंगे।" राजा के मुँह से इस तरह दीन वचन सुनते ही सब लोग वाह-वाह करके रह गए। फिर राजा ने कहा—"आप लोग यह देख ही रहे हैं कि मुझे बुढ़ापे ने आ दबाया है। अब मुझे इस विशाल राज्य की रक्षा का कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ता। राजा का धर्म है कि वह हर एक बात अपनी प्रजा की सहायता लेकर करे। इस कारण मैंने यह प्रश्न आप लोगों के आगे रख दिया है। अब आप लोग बतावें कि मैं इस राज्य को किसे सौंप दूँ। मैं जिस समय यह असार संसार छोड़कर चला जाऊँगा, उस समय फिर लौटकर आप लोगों के सुख और दुःख को तो देख ही नहीं सकता। पर अपने रहते हुए

इस बात के तय होने पर मेरी यह दिन-रात की चिंता दूर हो जायगी।"

राजा के मुँह से ये बातें सुनकर सब मुनि और ऋषि दुखी हो उठे। वे लोग राजा की दूरदर्शिता पर सोचते हुए बोले—"राजन्, आप धन्य हैं। वास्तव में हम लोगों को ऐसा राजा मिलना कठिन है। आपकी विलक्षण बुद्धि को धन्य है।" पश्चात् सब लोगों ने एकचित्त होकर राजा की जन्म-कुंडली मँगाई, और उसे देखकर बोले—"महाराज! आप हताश न हों। आप यह क्या कह रहे हैं। आपकी जन्म-कुंडली में पुत्र होना लिखा है। आप विश्वास रक्खें, वही आपका राज्याधिकारी होगा। पर पुत्र-रत्न पाने के लिये आपको यत्न अवश्य करना होगा। आप यज्ञ और तपस्या करें, इससे ईश्वर प्रसन्न होंगे। ज्यों ही ईश्वर प्रसन्न हो जायँगे, त्यों ही ये बातें कुछ कठिन न रहेंगी।"

मुनियों के मुख से इस प्रकार की बातें सुनकर राजा के आनंद का ठिकाना न रहा। पुत्र-रत्न का मुख देखने की कल्पना दिनोदिन बढ़ने लगी। राजा मुनियों की बातों को सदैव ही सत्य मानते थे। इस कारण उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि अब मेरे आनंद के दिन आवेंगे। राजा हमेशा इसी बात को याद कर मन के लड्डू खाने लगे।

मुनियों को बिदा करते समय राजा ने उन्हें मनचाहा दान दे-कर प्रसन्न किया और बोले—"हे पूजनीय ऋषियो, आपकी आज्ञा पालने को राज्य क्या, प्राण तक दे सकता हूँ। इस कार्य से एक तो मेरा वंश चलेगा, दूसरे राज्य की भी रक्षा होगी। फिर मैं आपकी बात किस तरह टाल सकता हूँ।" ऋषियों ने भी अश्वपति को सावित्री-देवी की आराधना बतला दी; फिर वे लोग अपने-अपने घर को चले गए।

कुछ समय के बाद राजा मुनियों के कहे अनुसार सारा राज्य और धन छोड़ साधु का रूप बना जंगल में तपस्या करने को चले गए। राजा के जाते ही सारी प्रजा में उदासी छा गई। किसी भी मनुष्य के मुख पर प्रसन्नता की झलक न रही। किंतु जब कभी लोगों को यह बात याद आती थी कि महाराज की तपस्या से सावित्री-देवी प्रसन्न होंगी, तो वे सोचते थे, ब्रह्माजी के प्रसन्न होने में देर ही क्या है। जब ब्रह्माजी प्रसन्न हो गए, तब तो हम लोग अवश्य ही राजकुमार के दर्शन कर अपनी आँखों को तृप्त करेंगे। यह सोचते ही उनका चेहरा खिल जाता था। राजा के वन को चले जाने के उपरांत राज का काम बूढ़े और चतुर मंत्री सँभालने लगे।

जो राजा कभी दूध के फेन के समान कोमल बिछौने पर सोते थे, वही आज वन में पहुँचकर कुशासन जमाए तपस्या

में मग्न हैं। उन्हें यह भी विदित नहीं कि इस समय दिन है या रात। राजा के हवन की ज्वाला से सारे वन में उजेला हो जाता है। धुआँ सीधा आकाश की ओर उड़कर सूर्य की प्रचंड किरणों से भी टक्कर खालेता है। राजा ने एक-दो दिन नहीं, अठारह वर्ष तपस्या की। अश्वपति की इस कठिन तपस्या को देखकर देवतों से न रहा गया। वे लोग मन में सोचने लगे कि जिस समय राजा की इस अखंड तपस्या से ब्रह्माजी प्रसन्न हो जायँगे, उस समय तो अश्वपति को अवश्य ही मुँह-माँगा वर दे बैठेंगे। देवगण समझते थे कि यदि ब्रह्माजी प्रसन्न हो गए, तो हमारा सारा बना-बनाया खेल मिट जायगा। किंतु नहीं, जो आदमी जैसा कार्य पहले कर जाता है, उसे उसका फल अवश्य मिलता है। ईश्वर भी उसे विना किए दुख-सुख नहीं देता। जो बबूल बोता है, उसे काँटे ही लगते हैं; पर जो आम का पेड़ लगाता है, उसे मीठे फल खाने को अवश्य मिलते हैं।

देवगण समझते थे कि ब्रह्माजी किसी से भी प्रसन्न या अप्रसन्न होकर उसके भाग्य में जैसा लिख देते हैं, वैसा ही होता है; पर नहीं, जो लिख सकता है, वह काट भी सकता है। यही विचारकर सब देवता ब्रह्माजी के कान भरने को गए। वहाँ क्या देखते हैं कि सभा ख़ूब खचाखच भरी हुई है। एक

ऊँचे आसन पर ब्रह्माजी विराजे हैं। चारो ओर वेद-गान हो रहा है। सब देवता अपने-अपने मन में तरह-तरह के विचार कर रहे थे। ब्रह्माजी को देखते ही उनके मुँह फीके पड़ गए। सबोंके चेहरों पर चिंता के चिह्न दिखाई देने लगे। जब ब्रह्माजी को विदित हुआ कि मुझसे मिलने को देवता आए हैं, तब उन्होंने सबको अपने पास बुलाया और उनकी कुशल पूछी। फिर पूछा—"बताइए, आप लोग यहाँ किस कारण से आए हैं ?" देवतों के मन की बातें सुनते ही ब्रह्माजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने मन में कहने लगे— "ये लोग कैसे स्वार्थी हैं। अरे ! जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल अवश्य मिलता है। फिर न-जाने ये देवता क्यों मरे जा रहे हैं।" कुछ कालोपरांत ब्रह्माजी ने सबको संबोधन किया, और बोले—"देवो ! अश्वपति तुम्हारा अधिकार छीनने को तपस्या नहीं कर रहा है। वह किसी दूसरे मतलब से ही तपस्या कर रहा है। जिसके पास अभी इंद्र से भी अधिक ऐश्वर्य एवं कुबेर से भी अधिक धन है, वह भला फिर तुम्हारा अधिकार काहे को लेगा ! उसे तो वहीं पर इंद्रपुरी के समान सुख है।"

ब्रह्माजी के मुँह से इस प्रकार के वचन सुनते ही सब देवता अपना-सा मुँह लेकर बैठ गए। वे लोग एक धुन में

लग जाने के कारण अपने को भूल गए थे। अब उनका होश ठिकाने आ गया। किंतु यमराज से न रहा गया; क्योंकि देवतों को समझाते समय ब्रह्माजी ने यह भी कहा था कि यदि अश्वपति को यम का अधिकार भी मिल जाय, तो भी वह उसका क्या करेगा। यमराज अपने मन में खिन्न होते हुए ब्रह्माजी से बोले—"महाराज! क्या मेरा पद लोगों की नजर में कम है? क्या मेरा पद पाने को किसी के मन में चिंता नहीं होती होगी? देखिए, मैं ही संसार का संहारकर्ता एवं धर्मराज हूँ।"

यमराज की इस प्रकार की बातें सुनते ही ब्रह्माजी उनके मन का भाव समझ गए। वह अपने मन में मुसकिराते हुए बोले—"यमराज, तुम्हारा ऐसा कौन बड़ा भारी अधिकार है, जिसे पाकर तुम इस तरह कह रहे हो। तुम क्या, मनुष्य पर तो मनमाना अधिकार मैं भी नहीं जमा सकता। अच्छा बताओ, क्या तुम एकदम लय कर सकते हो?" यमराज ने कुछ दुःखित होते हुए कहा—"मैं लय करने का काम, अपनी इच्छा के अनुसार न सही, आपकी इच्छा के अनुसार तो कर सकता हूँ।" ब्रह्माजी ने हँसकर कहा—"यमराज, तुम भूल रहे हो। कोई भी आदमी अपनी इच्छा के अनुसार न तो किसी को दुःख ही दे है सकता

और न किसी का लय ही कर सकता है। यदि तुम कुछ सोचो, तो तुम्हें मालूम होगा कि हम और तुम, दोनो एक निमित्त-मात्र ही हैं। प्राणी जो दुःख और सुख भोगते हैं, वे अपनी करनी के अनुसार ही पाते हैं। यद्यपि यह बात सत्य है कि मैं लोगों के भाग्य का विधाता हूँ; पर नहीं, मैं भी मनमानी नहीं कर सकता। पहले जब मनुष्य की करनी देख लेता हूँ, तब उस पर कार्य और कर्म का विचार करता हूँ। फिर जो मनुष्य जैसे कर्म करता है, उसे वैसा ही फल देता हूँ। तुम तो सिर्फ़ उस काम को पूर्ण करने के सहायक हो और मैं जो लिखता हूँ, उसे उसी तरह करके तुम अपना कर्तव्य पालन करते हो। यमराज, आप ही नहीं, मैं इस इतनी भरी हुई सभा में सब देवतों के सामने यही बात कहता हूँ कि जो जैसा करेगा, वैसा ही फल पावेगा।"

देवगण अभी तक अपने अधिकार के मद में चूर हो रहे थे। वे अपने मन में अपने को ही सब तरह का कर्ता-धर्ता समझते थे; पर अब उनकी आँखें खुल गईं। ब्रह्माजी ने कर्म को प्रधान बताया, उसे सुनते ही उनके कान खुल गए। वे लोग बड़े अचंभे में पड़े। फिर वे लोग ब्रह्माजी से बोले—"भगवन्, यदि मनुष्य के कर्म के अनुसार हेर-फेर हो सकता है, तो फिर आप वह हेर-फेर क्यों नहीं कर देते?"

ब्रह्माजी ने कहा—"देवतो, हेर-फेर हो सकता है; पर उसके करने को साधना भी अच्छी होना चाहिए।" यह उत्तर सुनते ही सब देवता बड़े आश्चर्य में पड़े। वे बोले—"भगवन्, यह बात आपने हम लोगों से अभी तक नहीं कही थी। एकदम आपके मुँह से इस प्रकार की बातें सुनते हुए हम लोग तो बड़े आश्चर्य में पड़े हुए हैं।" ब्रह्माजी ने कहा—"यह बात सत्य है कि मैंने तुम लोगों को नहीं बताया है। यह तुमने पहले ही पहल सुना है, इससे तो तुम लोगों को आश्चर्य अवश्य ही होगा। यह नियम है कि जिस मनुष्य ने कोई बात न सुनी हो, और वह उसे किसी श्रेष्ठ के मुँह से सुने, तो उसे आश्चर्य अवश्य हो। अब तुम लोग अपने-अपने घर को प्रसन्नतापूर्वक जाओ। अश्वपति तुम्हारा अधिकार पाने को तपस्या नहीं कर रहा है। उसे तो सबसे अधिक चिंता एक पुत्र का मुँह देखने की हो रही है। तुम लोग बिलकुल चिंता न करो। मेरी कही हुई बात का तुम लोगों को विश्वास नहीं है, इस कारण मैं ऐसी व्यवस्था करता हूँ, जिससे यह सिद्धांत भी तुम्हारी समझ में आ जाय।"

इतना सुनते ही सभा भंग हो गई। देवगण ब्रह्माजी को प्रणाम कर अपने-अपने घरों को चले गए। देवतों के चले जाने पर ब्रह्माजी ने अपनी प्यारी पुत्री सावित्री को बुलाया।

ज्यों ही सावित्री ब्रह्माजी के पास पहुँचीं, त्यों ही बोले—"बेटी, जंगल में अश्वपति राजा को तपस्या करते आज अठारह वर्ष पूरे हुए, पर तुमने अभी तक उन्हें दर्शन न दिए।"

ब्रह्माजी के मुख से इस प्रकार की बातें सुनते ही सावित्री बोलीं—"पिताजी, मैं उन्हें दर्शन कैसे दूँ? आपने तो उस बेचारे का मार्ग रोक रक्खा है! आप यह जानते ही हैं कि वह पुत्र होने की इच्छा से तपस्या कर रहा है; किंतु जब आपने उसे निस्संतान लिखा है, तब मेरा जाना और न जाना, दोनो बराबर ही हैं। मैं वहाँ जाकर क्या करती।"

सावित्री के मन की बात सुनते ही ब्रह्माजी समझ गए कि अन्य देवतों के समान सावित्री भी भ्रम में पड़ी हुई है। उन्होंने अपनी पुत्री को समझाकर कहा—"अच्छा तुम जाओ, अब वह राजा निस्संतान नहीं है। वह बहुत ही जल्दी एक पुत्री का मुँह देखेगा। अब तुम उससे कह आओ कि अधिक तपस्या करने की आवश्यकता नहीं। उसकी तपस्या सफल है। तुम देर न करो, उसको यह शुभ समाचार जल्दी सुना आओ।"

सावित्री ने फिर कहा—"प्रभो! अश्वपति ने तो पुत्र पाने को तपस्या की है, फिर पुत्री होने से उसकी इच्छा कैसे पूरी हो सकती है? पुत्र न होने से उसका राज्य तो धूल में ही मिल जायगा।"

ब्रह्माजी ने कहा—"सावित्री, पुत्री होने से उसका क्या बिगड़ता है। लड़का न सही, उसके नाती तो अवश्य ही राज्य के अधिकारी होंगे।"

ब्रह्माजी की बातों को सुनकर सावित्री ने फिर कहा—"पिताजी, मैं तो समझती थी कि आप जो लिख जाते हैं, उसे कोई मेट ही नहीं सकता। फिर क्या आप भी दूसरे लोगों की तरह अपनी बात पर अटल नहीं रहते? यह मेरा भारी भ्रम मिटा दीजिए।"

ब्रह्माजी बोले—"पुत्री, क्या तू भी अन्य देवतों के समान पागल हो गई है? यदि लोग यह सुन लेंगे कि अश्वपति ने सावित्री की इतनी कठिन तपस्या की; पर उसका फल उसे बिलकुल ही न मिला, तो यह कितने कलंक की बात होगी। इस कलंक को हम अवश्य ही दूर करेंगे। भाग्य तो कोई बात ही नहीं है। मनुष्य के कर्मानुसार भाग्य में उलट-फेर होता रहता है। जो आदमी चोरी करेगा, वह बात खुल जाने पर अवश्य ही क़ैद में जायगा। मैं तो केवल अवलंब-मात्र हूँ। हाँ, यद्यपि लोग यह कहा करते हैं कि यह हमारे भाग्य में ही बदा होगा; किंतु ऐसा नहीं है। यदि वह मनुष्य बुरे काम न कर अच्छे काम करता, तो क्या उसे उसका फल न मिलता। राजा अभी निस्संतान था; पर अब उसने इतनी कठिन तपस्या की, जिससे

देवतों को भी अपना अधिकार जाने का भय हो गया। फिर यदि मैं ऐसे राजा को, जो पुत्र की इच्छा से तपस्या कर रहा है, पुत्र न देकर पुत्री दूँ, तो इसमें क्या बुराई है। अश्वपति ने अपने पूर्व जन्म में ऐसे काम किए होंगे, जिस कारण वह इतने सुख का मालिक होते हुए भी पुत्र का मुँह न देख सका। तुम लोगों का यह भारी भ्रम मिटाने के लिये ही मैं यह कार्य सोच रहा हूँ। अब इससे सब लोगों की आँखें खुल जायँगी। वे भूल जायँगे कि इस संसार में कर्म ही प्रधान है। मेरे इस तरह करने पर देवतों का भ्रम तो दूर हो ही जायगा, लोगों को भी इससे शिक्षा ग्रहण कर अच्छे काम करने की शिक्षा मिल जायगी।"

अपने पिता की बातें सुनकर सावित्री समझ गई कि अब अश्वपति के अवश्य ही कन्या उत्पन्न होगी। अब मुझे यह शुभ समाचार अवश्य सुना आना चाहिए। इस तरह मन में सोचकर सावित्री ने अपने पिता को प्रणाम किया, और ब्रह्मलोक से अश्वपति के पास आ गई।

जिस समय सावित्री अश्वपति की तपोभूमि में आई, उस समय क्या देखती हैं कि सारा वन हरा-भरा दिखाई दे रहा है। ऐसा कोई भी पेड़ नहीं है, जो सूखा पड़ा हो। प्रत्येक पेड़ में तरह-तरह के फूल लगे हैं। फलों के बोझ से

वृक्षों की डालियाँ धरती की ओर झुक रही हैं। जहाँ-तहाँ हरी दूब के ग़लीचे-से बिछ रहे हैं। मृगों के बच्चे उन पर प्रसन्नतापूर्वक घूम रहे हैं। यज्ञ के धुएँ से आकाश भरा हुआ है। राजा कुशासन पर बैठे अपने नेत्र बंद किए भजन में मस्त हैं।

राजा की ऐसी कठिन तपस्या देख सावित्रीदेवी मन-ही-मन प्रसन्न होती हुई राजा से बोलीं—"बेटा! शांत हो। तू जिसको बुलाने के लिये इतनी कठिन तपस्या कर रहा है, वह मैं आ गई। अब तुम्हें जो कुछ माँगना हो माँग लो।" राजा सावित्री को देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसकी आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे। गला भर आया। सत्य है, यदि कोई मनुष्य अपना कठिन काम पूर्ण होता हुआ समझ लेता है, तो उसकी ख़ुशी का ठिकाना ही नहीं रहता।

राजा ने देवी को प्रणाम किया, और गद्गद शब्दों में कहा—"महारानी, आप तो जानती हैं कि मुझे संतान की इच्छा है, इसी कारण आपको यहाँ तक आने का कष्ट उठाना पड़ा। अब मेरी आपसे बार-बार यही बिनती है कि आप मेरी इस इच्छा को पूर्ण कर मुझे कृतकृत्य कीजिए।"

राजा के मुँह से यह सुनते ही सावित्री ने कहा—"राजा, चिंता न करो। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम शीघ्र ही कन्या

का मुख देखोगे। उस कन्या से जो पुत्र होंगे, वे ही तुम्हारे राज्य के अधिकारी बनेंगे। तुमको शुभ समाचार सुनाने के लिये ही मुझे ब्रह्माजी ने भेजा है।"

इतना कहकर देवी अंतर्द्धान हो गई। फिर राजा को देवी के दर्शन तक न मिले। राजा की तपस्या सफल हुई। वह मन में इस प्रकार प्रसन्न हुए, मानो अंधे को फिर से नेत्र मिल गए हों। राजा बार-बार अपने भाग्य को सराहते हुए प्रसन्नचित्त नगर की ओर आए। राजा को अपने घर की ओर आते देख प्रजा लोग समझ गए कि अब अवश्य ही सब लोगों की इच्छा पूर्ण होगी। यह बात इस तरह से फैली कि कुछ ही काल में सारे राज्य के लोग अपने राजपुत्र का मुख देखने को दिन-प्रति-दिन उत्सुक होने लगे। लोग जहाँ-तहाँ बैठकर इसी की चर्चा चलाने लगे। कितने तो राज-पुत्र का मुख शीघ्र ही देखने के लिये जप करने लगे। लोग जहाँ-तहाँ बड़ी-बड़ी सभाएँ करके राजा की जय-ध्वनि और उनके भाग्य की सराहना करने लगे। जिन लोगों के मुख अभी तक कुम्हलाए-से रहते थे, वे अब खिल गए, जैसे सूर्य का उदय होते ही कमल का फूल खिल जाता है। सब अपने घरों की सजावट एक-से-एक बढ़कर करने लगे। स्त्रियाँ मंगल-गान गाने लगीं। नगर की सखियाँ, जो रानी को अपनी माता से

भी ज्यादा प्यार करती थीं, प्रतिदिन इनका शुभ समाचार जानने को महल में जाने लगीं।

ईश्वर की इच्छा बड़ी प्रबल होती है। कुछ काल के उपरांत रानी गर्भवती हुई। फिर नौ मास व्यतीत होते मालूम भी न पड़े कि किस आनंद और सुख में निकल गए। नौ मास व्यतीत होते ही रानी के एक सुलक्षणा कन्या उत्पन्न हुई। राजमंदिर में कन्या का उत्पन्न होना सुन लोगों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। राजा के राज्य-भर में जितने मंदिर, मठ, शिवालय थे, सबों में लोगों ने जा-जाकर आरती और वंदना करना शुरू किया। हरएक नगर और गली बंदनवारों तथा फूल की मालाओं को लटकाकर ख़ूब ही सजाई गई। अपनी प्राणों से प्यारी पुत्री पाकर महाराज अश्वपति के आनंद का तो कहना ही क्या था। उनकी इस समय यह दशा हो रही थी, मानो किसी कंगाल को तीनो लोकों की लक्ष्मी मिल गई हो। राजा ने अपनी बालिका के सुख के लिये ब्राह्मण तथा दीन और दुखियों को नाना प्रकार के वस्त्राभूषण दिए। जो आदमी बहुत ग़रीब थे, उनके घरों में भी राजा का दिया हुआ अन्न धरे नहीं समाता था। ब्राह्मण तो दान की वस्तुएँ ढोते-ढोते थक गए, तो भी राजा का दिया हुआ दान वे लोग अपने घरों तक न पहुँचा पाए। बेचारे छोटे-छोटे बच्चे तो मिठाई

और दूध-मलाई खाते-खाते अघा गए। राज्य-भर में आनंद की बधाई बजने लगी। स्त्रियाँ झुंड-की-झुंड आकर राज-भवन में मंगल-गान गाने तथा राजकन्या को देख अपनी आँखें ठंडी करने लगीं।

राजा के घर पुत्री का होना सुनकर देश-देश से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आए और अपने दोनो हाथों को उठाकर पुत्री को आशीर्वाद देने लगे। राज्य-भर में जितने सेठ-साहूकार थे, सबों ने राजकन्या के खेलने को अनेक बहुमूल्य खिलौने दिए। जो साधारण आदमी थे, वे ख़ाली ही हाथों राजा की ड्योढ़ी पर आए। अपनी प्रजा के लोगों का इस तरह प्रेम तथा सच्ची स्वामिभक्ति देख राजा के आनंद का ठिकाना न रहा।

दूसरा अध्याय

लोगों के आनंद के दिन बीतते देर न लगी। किसी को भी समय जाते मालूम न पड़ा। राजा को कन्या सावित्रीदेवी के अनुग्रह से प्राप्त हुई थी, इस कारण उन्होंने इसका भी नाम सावित्री ही रख लिया।

सावित्री पूरी सावित्री थी। उसका शरीर कुंदन के समान था। रंग धीरे-धीरे ज्योत्स्ना की तरह निर्मल और स्निग्ध हो गया। कन्या के दोनो नेत्र कमल की पखुरी के समान गंभीर थे। सिर के बाल टेढ़े होकर मुख को ढकने के लिये तैयार होने लगे।

सावित्री धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। माता-पिता की गोद को छोड़कर घुटनों चलने लगी। घुटनों चलना छोड़कर मा-बाप का हाथ पकड़कर चलने लगी। धीरे-धीरे नगर के बालक-बालिकाओं के साथ खेलने लगी। सावित्री की मीठी-मीठी और चतुराईभरी बातें सुनकर सबका जी यही चाहता था कि मैं सदा उसकी बातें सुनता रहूँ।

राजा जिस समय राजसभा में जाते, अपनी लड़की को साथ ले जाते थे। होम, यज्ञ आदि करते, तो भी सावित्री पास ही

जाकर बैठ जाती थी। राजा कभी-कभी तो लड़की के खेलने और कभी-कभी उसके पढ़ाने-लिखाने में अपना समय व्यतीत करते थे। वह कभी तो उसे संसार के काम-धंधे बताते और कभी-कभी धर्म का उपदेश देते थे। ईश्वर की भक्ति और संयम-शिक्षा के लिये राजा जितनी तरह के व्रत-नियम-पालन की व्यवस्था करते थे, सावित्री आग्रह से पिता की आज्ञा पालन कर बहुत सुख पाती थी। केवल व्रत-नियम का पालन करके राजा शांत न होते थे; जब कभी समय पाते अपनी प्यारी पुत्री को अनेक पुण्यवती आदर्श सती रमणियों की कहानी सुनाते थे। सावित्री अपने मन और प्राण से उन चरित्रों का अनुकरण ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाना स्थिर करती थी।

तपोवन की बातें सुनने में सावित्री का मन बहुत ही लगता था। सावित्री राजसभा में ऋषि-मुनियों को बुलाकर तपोवन की बातें सुनती थी। ये बातें सुनकर सावित्री का जी भर जाता था।

एक समय राजा ऋषियों से मिलने और तपोवन की पुण्य-भूमि देखने को चले। सावित्री ने भी ज़िद पकड़ ली कि पिताजी, मैं भी आपके साथ चलूँगी। बस, उसी समय गहने-कपड़े उतार-कर ऋषि-बालिका के समान पिता के पीछे खड़ी हो गई।

सावित्री की श्रद्धा देखकर राजा विवश हो गए और उसे अपने साथ ले चले ।

अहा ! सावित्री तपोवन देखकर कितना खुश हुई। ऋषि-बालिकाओं के साथ खेलने से उसका जी नहीं भरता । हरिण के बच्चे को नरम-नरम दूब तथा ऋषि-बालकों को दो-दो चने खिलाने में भी उसका जी नहीं अघाता था । उस समय ऐसा ही मालूम होता था, मानो तपोवन ही उसके सुख की जगह है । वहाँ जाने पर फिर उसे राजमहल की इच्छा न होती थी । अश्वपति एक दिन में आने की बात कहकर तपोवन को जाते थे; पर सावित्री के कारण तीन दिन में भी नहीं फिर सकते थे ।

सावित्री का बचपन गया, लड़कपन भी गया । उसके शरीर की कांति दिनोंदिन बढ़ने लगी । अब वह जिद्द नहीं, वह बहाना नहीं, मानो लज्जा ने आकर सबको दूर कर दिया । धीरे-धीरे सावित्री ने धूल में खेलना-कूदना छोड़कर घर के काम-धंधों में तथा व्रत-पूजन में मन लगाया । सावित्री सदा जी भरके माता-पिता की सेवा करती थी । नौकर और मजदूरिनों को प्यार तथा अपने और पराए पर दया करती थी । सावित्री मानो सबके सुख-दुःख की चिंता करती थी । सखियाँ सावित्री को छोड़कर एक क्षण भी नहीं रह सकती थीं । पड़ोसिनें सदा उसे घेरे रहती थीं । पशु-पक्षियों को भी सावित्री जी से प्यार करती थी ।

किसी का कभी कष्ट देखकर उसकी आँखों में पानी भर आता था।

धीरे-धीरे सावित्री के रूप और लावण्य की बातें संसार-भर में छा गई। जिस राज्य में जाओ, वहाँ ही सावित्री के गुणों की बातें सुनाई देती थीं। राह में एक-दो आदमी बातें करते, तो भी सावित्री के ही रूप की बातें। राजदरबार में, राज-राज में, घर-घर में, क्या रानी, क्या गृहस्थ, क्या भिखारी, सभी सावित्री के गुणों की प्रशंसा करते थे।

सावित्री के इन लक्षणों से महाराज अश्वपति का ध्यान उसके विवाह की ओर गया। सावित्री को विवाह-योग्य देख महाराज के सिर योग्य वर खोजने की चिंता सवार हो गई। महाराज मन में विचारने लगे—"मेरी एक ही तो प्राणों से प्यारी पुत्री है। इसको पाने के लिये मैंने कितने कष्ट सहे हैं। फिर जगत्पिता की मुझ पर ऐसी दया है कि मैं अपनी पुत्री के रूप-लावण्य और उसके गुणों के सामने सरस्वतीदेवी को भी कम समझता हूँ। इसलिये पृथ्वी पर जहाँ कहीं भी, मुझे जो सबसे श्रेष्ठ और योग्य वर मिलेगा, उसी के साथ मैं अपनी कन्या का विवाह करूँगा। जो वर किसी भी एक बात में कम होगा, उसके साथ मैं अपनी लड़की को कभी नहीं भेज सकता।"

महाराज ने यही सोचकर अपने राज्य के विश्वासी ब्राह्मणों और भाटों को बुलाया और उन्हें देश-देश में भेजकर वहाँ के राजकुमारों के गुणों और दोषों की परीक्षा की। जब सब लोग वापस आ गए, तब मालूम हुआ कि विधाता ने ऐसी सुलक्षणा कन्या के योग्य वर का जन्म ही नहीं दिया। किसी का भी प्रयत्न सफल न समझ राजा अपने मन में विचार करने लगे—"देखो, यह संसार कैसा विचित्र है! जहाँ पर कानी और कुरूप कन्याओं तक का विवाह हो जाता है, वहाँ सावित्री के योग्य कोई वर ही नहीं मिलता।" कुछ ठहर-कर फिर उन्होंने सोचा—"यदि ईश्वर मेरी पुत्री को इतना अच्छा रूप और लावण्य न देता, तो क्या बुराई थी। इस रूप की छटा मनुष्य की आँखें सह नहीं सकतीं। जो उसकी ओर देखता है, उसी का जी झुलस जाता है। सब लोग रूपवान् को देवी समझ बैठते हैं और फिर डर के मारे उसके सामने तक नहीं होते। यही कारण है कि जितने राजों, राजकुमारों और मंत्री-पुत्रों के पास मेरे दूत गए, उन-में से किसी का भी साहस ऐसी सुलक्षणा कन्या के साथ विवाह करने को नहीं हुआ।"

सावित्री के अपूर्व रूप और अकथनीय सुंदरता का हाल सुनकर यदि कोई मनुष्य अपने घर से साहस करके, कई

तरह से सज-धजकर, राजा के पास आता भी था, तो उसके रूप को देखकर उसकी आँखें चौंधिया जाती थीं। वह लज्जित हो जाता था। ऐसी किसी भी आदमी की हिम्मत नहीं थी, जो सावित्री का रूप देखकर लज्जित न हो जाय। ज्यों ही कोई आदमी राजकन्या के सामने आता था, त्यों ही उसके नेत्र, कुछ काल को, बंद हो जाते थे और लज्जा के कारण वह सावित्री को माथा झुकाकर चला जाता था। यदि कोई आदमी कड़ी हिम्मत करके सावित्री के रूप को देखना भी चाहे, तो उसे ऐसा विदित होता था, मानो वह किसी देवी की मूर्ति का दर्शन कर रहा हो।

यह बात धीरे-धीरे सारे संसार में फैल गई। इतनी बड़ी बात कैसे गुप्त रह सकती थी! विवाह की बात करना तो दूर रहा, लोग सावित्री का नाम ही सुनकर विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देते थे। जब महाराज को किसी भी तरफ़ कोई वर न मिला, तब वह बड़ी चिंता में पड़े। उन्होंने जिन लोगों को वर खोजने के लिये भेजा था, वे सब हताश होकर कई विकट बातें सुनाते हुए आए। कोई कहता था—"लोग सावित्री के विवाह का नाम सुनते ही अपने कानों पर हाथ रख लेते हैं। वे न-जाने एकदम ऐसा क्यों कह बैठते हैं कि उसे तो हम अपनी माता के समान मानते हैं। जब हम

उसे ऐसी नज़र से देखते हैं, तब विवाह की बात कैसी ?" कई तो, जो राजों की मार खाकर आए थे, अपनी-अपनी पीठ निकालकर चाबुकों के चिह्न दिखाने लगे। राजा अपने दूतों के मुख से ऐसी विचित्र बातें सुनकर इस तरह सहम गए, जैसे मृगी अपने चारो ओर दवार लगी देखकर सहम जाती है। राजा को अपनी कन्या के पाने और उसके साथ वार्तालाप करने में जितना आनंद आता था, अब उन बातों को याद कर उन्हें उतना ही दुःख होने लगा। राजा सोचने लगे—"न-जाने ईश्वर ने हमारे भाग्य में कैसी-कैसी आपत्तियाँ लिखी हैं! जैसे-तैसे लड़की मिली, तो उसका वर नहीं मिलता। देखो, जिन गुणों के पाने को लोग अनेक प्रयत्न करते हैं, वे ही सब गुण आज सावित्री के लिये कुल्हाड़ हो रहे हैं!" महाराज की यह चिंता यहाँ तक बढ़ी कि उनका खाना-पीना, सोना और काम-काज, सब भूल गया। इधर क्या था, सावित्री को तो इस बात की कोई फ़िकर ही न थी। वह तो उसी तरह लाड़ और प्यार से पाली जा रही थी। वह दिनोंदिन उन्नति पाने लगी। रमणियों में जो बातें बड़े ही सौभाग्य से मिलती हैं, सावित्री में उन्हीं बातों के विशेष होने से राजा तथा रानी को इतना कठिन दुःख सहना पड़ा! वास्तव में सावित्री के रूप को देखकर यही मालूम

होता था कि ब्रह्मा ने सारे संसार की सुंदरता इसी को दे दी है।

राजा जब अनेक उपाय कर चुके और सब विफल हुए, तब उन्होंने सोचा--"सावित्री को आप ही अपना वर खोजने को भेजना चाहिए। यह काम उसी का है। वह ख़ुद समझदार और पढ़ी-लिखी है। यदि वह अपना वर आप खोज ले, तो इससे बढ़कर सुख की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है। जब कोई राजपुत्र उसका स्वरूप और लावण्य देखकर राज़ी नहीं होता, तब ऐसा करने में क्या हानि है! सावित्री जिसे अपने इच्छानुसार वरण कर लेगी, वह पुरुष उसे विमुख नहीं लौटावेगा। यह मेरी पूर्ण धारणा है।" ये बातें सोचकर राजा सावित्री के स्वतः ही वर ढूँढने का मौक़ा देखने लगे। इसीलिये उन्होंने एक भारी सभा की। उसमें देश-देश के राजपुत्रों को निमंत्रण भेजा। स्वयंवर-भवन बिलकुल ख़ाली ही पड़ा रहा। इस स्वयंवर में किसी भी राजकुमार ने आने का साहस न किया। राजा ने इस काम के करने में न-जाने कितना रुपया व्यय किया था और कितना परिश्रम उठाया था; पर सब निष्फल हुआ।

पाणि-ग्रहण की रीति आजकल जो इस देश में चल रही है, पहले न थी। प्राचीन काल में विवाह करने की प्रथा कुछ

और ही थी। उस समय में आजकल के समान माता-पिता अपनी प्यारी कन्याओं को आँख मीचकर, जहाँ जी में आया, नहीं डाल देते थे। वे पहले कन्या की योग्यता, गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार वैसे ही गुणी की खोज करते थे। फिर वर को पसंद करना या न करना, यह कन्या की इच्छा पर रहता था। वे लोग समझते थे कि हम लोग तो कन्या का जन्म-भर साथ नहीं दे सकते, फिर उसके सुख के दिन क्यों दुःख में डालकर पाप के भागी हों। कन्या जिस वर को पसंद कर लेती थी, उसी के गले में जयमाल या वरमाला डाल देती थी। माता-पिता भी उसी को स्वीकार कर बड़ी धूम-धाम से उसी के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देते थे।

राजा ने जब अपना यह विचार भी सफल होता हुआ न जाना, तब अपने मंत्रियों और वृद्ध ब्राह्मणों की सलाह लेकर सावित्री को तीर्थ-यात्रा कराने का विचार किया। इसी तीर्थ-यात्रा से अनेक काम थे। एक तो यह कि तीर्थ करने से मन पवित्र होता है। कर्म-दोष अलग हो जाते हैं। अनेक लोगों से परिचय भी हो जाता है। इसमें राजा का यह भी विचार था कि इसी सुअवसर से कदाचित् सावित्री को योग्य वर भी मिल जाय। अपने मन में इस तरह का पक्का निश्चय कर एक दिन महाराज अश्वपति ने, अपनी प्यारी पुत्री सावित्री

को अपने पास बुलाकर, उसके सामने यह बात प्रकट करने का विचार किया।

इस समय संध्या हो रही थी। आज सावित्री व्रत थी, इस कारण मंदिर में जाकर महादेवजी का यथाविधि पूजन कर अपने कमल के समान कोमल करों में फूल की रीती कटोरी लेकर रनिवास की ओर आ रही थी। सावित्री को राजमहल की ओर आते देख राजा ने उसे बुलाया—"बेटी! इधर आओ।"

अपने प्यारे पिता का बुलाना सुनकर आज्ञाकारिणी सावित्री ने फूल की कटोरी वहीं पर रख दी और पिता के पास जाकर अपना सिर नीचा कर खड़ी हो गई। अपनी प्यारी पुत्री का ऐसा आचरण देख राजा मन में एकदम अधीर हो उठे। जिसे वे अपनी आँखों से अलग नहीं करना चाहते थे, आज उसे ही अपना वर ढूँढने के लिये तीर्थ-यात्रा को भेज रहे हैं! यह ध्यान आते ही उनकी छाती भर आई। पर वह क्या करते। यह तो विधाता की की हुई बात थी। राजा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा कि अब सावित्री का पंद्रहवाँ वर्ष पूरा हुआ, और वह सोलहवें में पहुँच गई है। अपनी पुत्री की यह अवस्था देखते ही राजा ने सोचा, सावित्री को ज्यादा छोड़ना ठीक नहीं है। यही सोचकर वह बोले—"बेटी! तेरा संप्रदान-काल पास आ गया।

मैंने अपने मन से अनेक उपाय कर डाले; पर कोई भी सफल न हुआ। अब मेरा यह विचार है कि तू अब तीर्थ-यात्रा कर आ। इसी समय में अपने योग्य वर को भी चुन लेना।"

महाराज की बातें सुनते ही सावित्री के शरीर का रंग लाल पड़ गया। वह इस समय ऐसी खड़ी थी, मानो निर्जीव हो। उसका बोलना तो एक ओर रहा, वह गर्दन तक न उठाती थी। कारण स्पष्ट था। विवाह की बात सुनते ही ऐसी कौन आर्य-नारी होगी, जो स्वभावतः ही लज्जा से नतमस्तक न हो जाती हो। इस कारण के सिवा सावित्री में एक विशेष गुण यह था कि वह दूसरे का दुःख नहीं देख सकती थी। यदि वह किसी समय किसी दीन या दुखी को देख ले, तो आप-ही-आप उसकी आँखों से आँसू बहने लगते थे। वह सोचने लगी—"हा! मेरे माता-पिता ने मुझे कितने कष्ट से पाला, मुझ पर कितनी दया की, कितने लाड़-प्यार से रक्खा; पर अब उन्हीं माता-पिता को मेरे ही कारण कितना दुःख उठाना पड़ता है। हा! मैं कैसी अभागिनी हूँ, जो अपने वृद्ध माता-पिता को सुख न देकर उनके दुःख का कारण बन रही हूँ। चाहे कुछ भी हो, अब तो मैं अवश्य ही अपने माता-पिता का दुःख दूर करने का उपाय करूँगी।" इन बातों के मन में आते ही सावित्री ने लज्जा को छोड़कर पिता से कहा—"पिताजी, आप इतने दुःखी न हों।

मैं आपकी इस बड़ी चिंता का भार अपने ही सिर पर लिए लेती हूँ।"

अपनी पुत्री के मुख से ऐसा वचन सुनते ही अश्वपति ने कहा—"बेटी, तुम किसी भी बात की चिंता न करो। मैं यह जानता हूँ कि तुम सब बातों को जानती और समझती हो, तुम्हारी बुद्धि स्थिर है। तुम शास्त्रों को जाननेवाली और कर्तव्यपरायणा हो। तुम इस भारी बोझ को, जो मुझसे नहीं चल सका, उठा सकती हो। यही विचारकर मैंने तुमको आज यह आज्ञा दी है।" इस प्रकार अपनी पुत्री को समझा-कर राजा ने सावित्री को आशीर्वाद दिया। पुत्री ने भी पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरण छुए। पश्चात् वह फिर धीरे-धीरे राजभवन की ओर चली गई। सावित्री के चले जाने पर राजा के नेत्रों से आँसुओं की धारा बह निकली। वह सोचने लगे—"मैं कैसा हतभाग्य हूँ! जिसे मैंने इतने कठिन परिश्रम से पाला था, आज उसे अपना वर ढूँढने को देश-विदेश में फिरने की आज्ञा दे चुका हूँ।"

कुछ कालोपरांत राजा ब्राह्मणों से एक शुभ मुहूर्त शोधवा-कर सावित्री के जाने की तैयारी करने लगे। सावित्री के साथ अनेक सखियाँ भी जाने को तैयार हुईं। राजा ने अपने मन में सोचा कि मेरी प्यारी पुत्री को इस बड़ी यात्रा में कहीं तक-

लीफ़ न हो, इसलिये उन्होंने एक सुंदर रथ सजाया। सामग्री के तो अनेक रथ भरे गए। सावित्री के साथ राजा के वृद्ध मंत्री भी चले। राजा भी अपनी प्यारी कन्या को पहुँचाने के लिये बहुत दूर तक गए।

सावित्री एक मनोहर रथ पर बैठकर चली। वह रथ नदी, नद, पर्वत आदि को लाँघता हुआ अश्वपति के राज्य के बाहर पहुँचा। पाठको, आप लोगों को यह बात तो विदित ही है कि सावित्री को वन की शोभा देखकर परम आनंद होता था। प्राचीन काल में यह भारतवर्ष सब देशों से आगे बढ़ा हुआ था, यह बात तो आप लोगों से छिपी हुई नहीं है। यहाँ के लोग परस्पर प्रेम रखते थे। जंगलों में सब पशु-पक्षी प्रसन्नता-पूर्वक विचरते रहते थे। सावित्री रथ पर चढ़ी हुई क्या देखती है कि कहीं पर नदियाँ कलकल शब्द करती हुई बहती जाती हैं। कहीं पर पक्षी झुंड-के-झुंड डालियों पर बैठकर गाने गा रहे हैं। कहीं पर पानी चट्टानों से टक्कर खाकर शब्द करता हुआ बहता है। कहीं पर हरे-भरे खेत दिखाई देते हैं। कहीं पर तपोवनों में ऋषि-मुनि वेद-गान कर रहे हैं। कहीं पर मृगों के बच्चे सुख-पूर्वक यहाँ-वहाँ विचर रहे हैं। कहीं गाएँ चुपचाप हरी-हरी घास खा रही हैं। कहीं पर झुंड-के-झुंड गायों और हिरनों



के बैठे हैं, जो अपनी आधी आँखें बंद किए जुगाली कर रहे हैं। सावित्री इन पशुओं को देखकर अपने पिता के वृद्ध मंत्री से अपनी उँगली उठाकर पूछती जाती थी, और मंत्री भी सावित्री का मन इस ओर देखकर तरह-तरह के उत्तर देते थे। उन उत्तरों को सुनकर सावित्री मन-ही-मन प्रसन्न होती जाती थी।

रास्ते में ज्यों ही रात होने का समय आता था, मंत्री पास ही के किसी तपस्वी के आश्रम के निकट टिक जाते थे। संध्या होते ही रात का अँधेरा धीरे-धीरे सारी पृथ्वी को ढक लेता था। आकाश में तारागण चमकते हुए इस तरह दिखाई देते थे, मानो वे ईश्वरीय लीलाओं को देखकर हँस रहे हों। राजा अश्वपति की कन्या को अपने स्थान पर आई सुनकर मुनि की स्त्रियाँ और बालिकाएँ दौड़कर सावित्री के पास आती थीं। अपने पास मुनि-स्त्रियों को आते देख सावित्री भी प्रसन्नता-पूर्वक उनके चरण पर पड़कर अपने को कृत-कृत्य समझती थी। कन्या का इस तरह आचरण देख सभी उसके गुणों की प्रशंसा करने लगते थे। जब उन्हें यह विदित होता कि सावित्री अपना वर भी खोज रही है, तब तो वे उसे आशीर्वाद देती थीं कि परमात्मा अब ऐसी कृपा करे, जिससे राजपुत्री को इसी के समान सब गुणों से पूर्ण वर मिले। रात व्यतीत करने को सावित्री मुनि-पत्नियों और मुनि-कन्याओं से नाना

प्रकार का वार्तालाप करती हुई प्रसन्न होती थी। मुनि-स्त्रियों की बातें सुनकर उसके हृदय में यही भाव जम गया कि जितना सुख, शांति और आनंद वन में रहनेवाली मुनि-स्त्रियों को है, उतना सुख राजमहल में मिलना एक बहुत ही कठिन कार्य है। कुछ समय बाद जब अधिक रात व्यतीत हो जाती, तब सावित्री भी मुनि-कन्याओं के समान सो जाती थी।

अगले दिन सबेरा होते ही रथ सजाए जाते थे। नौकर-चाकर अपना-अपना सामान लेकर आगे चलते थे। सावित्री भी बहुत ही विनीत भाव से मुनि-स्त्रियों को प्रणाम कर आगे चलने को तैयार हो जाती थी। सावित्री के रथ पर बैठते ही फिर अनेक मनोहर वन और प्रांत दिखाई देते थे।

इस तरह राजपुत्री दिन-भर तो रथ में बैठकर यात्रा करती और रात को मुनियों के आश्रम में रहकर अनेक तरह की शिक्षा लेती थी। इस तरह सावित्री के दिन-पर-दिन बीतने लगे। तीर्थों के पास पहुँचकर वह सब भिखारियों को दान देती थी। मुनि-आश्रमों में ऋषियों की वंदना करती और नगरों में पहुँचकर पंडित एवं दीन-दुखियों को तरह-तरह का दान देती थी।

इस प्रकार अपने कामों से सब लोगों को खुश करती हुई सावित्री अनेक तीर्थ कर चुकी; पर अभी तक उसके भाग्य

का उदय न हुआ था। आज सावित्री का वाम अंग फड़क रहा था और रास्ते में अनेक शुभ चिह्न दिखाई दे रहे थे। राजपुत्री अपने मन-ही-मन इन शकुनों को देखकर हृदय में सोच रही थी कि विधाता आज न-जाने क्या करनेवाला है। धीरे-धीरे शाम हुई। सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जाने लगे। पक्षी अपने घोसलों की ओर उड़ते चले जा रहे थे। मंद-मंद वायु चल रही थी। सूर्य की किरणों से सारा गगन बहुरंगी हो गया था। इसी समय सावित्री भी एक अंधे तपस्वी के आश्रम में आ पहुँची। सावित्री जिस रत्न को अनेक राजों की राजधानियों में और अनेक तीर्थों में ढूँढती फिरी थे, पाठको, वह रत्न आज इसी आश्रम में मिला।

जिस समय सावित्री का रथ तपोवन में पहुँचा, उस समय उसे एक अपूर्व ही शोभा दिखाई दी। मैदान खुला था। एक बालक एक घोड़े के बच्चे के साथ खेल रहा था। वह बालक देखने से ऋषि-पुत्र-सा जान पड़ता था। उसके माथे पर जटा बँधे थे। वल्कल के वस्त्र पहने था। उसके शरीर को देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो कोई पवित्र ज्योति निकल रही हो। बालक के मुख पर कोमलता के सिवा क्षात्रतेज दिखाई देता था। उसका पराक्रम सिंह के समान था। उसकी चाल मस्त हाथी के समान थी। आकाश में जैसे चंद्र की शोभा होती

है, वैसी ही शोभा इस बालक की इस समय दिखाई दे रही थी। यौवन की छटा से उसकी स्वाभाविक सुंदरता और भी बढ़ गई थी। उसके नेत्रों से एक विलक्षण ही तेज दिखाई देता था। वह बालक बिलकुल ही बालक न था। वह किशोर अवस्था को पार कर यौवनावस्था में पैर रख रहा था। इस समय वह बालक घोड़े की गर्दन पकड़कर कई प्रकार के खेल खेलता था। कभी वह उसकी गर्दन और पुट्ठे पर थपकी मारता था, कभी हरी दूब उखाड़कर उसे खिलाता था। बच्चा भी अपने स्वामी के साथ प्रेम-पूर्वक अनेक तरह के खेल खेलता था। इस समय दोनो का प्रेम और खेल देखकर सावित्री मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई और अपने पिता के मंत्री से बोली—"आज यहीं पर विश्राम करना चाहिए; क्योंकि यह किसी पहुँचे हुए तपस्वी का तपस्थान मालूम पड़ता है।" राज-कन्या के मुँह से ठहरने की बात सुनकर मंत्री ने भी अपना रथ तपोवन की ओर लौटा दिया। अपने पिता के स्थान पर रथ को आया देख ऋषि-पुत्र अपना खेल छोड़ उनका परिचय पाने को एकदम दौड़कर रथ के पास आ गया। घोड़े का बच्चा भी उसके पीछे-पीछे दौड़ता हुआ चला। बालक रथ के पास आया, तो उसने सावित्री और उनकी सहेलियों की पोशाक देखी। उनके अमूल्य आभूषणों को देखकर वह दंग हो गया।

रथ पर अनेक बालिकाओं तथा वृद्ध मंत्री को देख बालक ने समझा कि ये कोई विशेष अतिथि होंगे। अपने मन में इस तरह का विचारकर वह उनका परिचय पाने को आगे बढ़ा। ऋषिकुमार को अपने पास आते देख वृद्ध मंत्री रथ पर से उतरकर बोले "ऋषिकुमार! हम लोग तीर्थ-यात्रा करते फिरते हैं, अब शाम हो गई है, इससे हम लोग आज की रात यहीं पर रहकर विश्राम लेना चाहते हैं। कृपया आप बतावें कि यह किन महामुनि का आश्रम है।" अतिथियों के मुख से ठहरने की बात सुनकर बालक ने कहा—"महाशय, यह द्युमत्सेन का आश्रम है। वह मेरे पिता हैं। वह किसी समय शाल देश के राजा थे। ईश्वर की कृपा बड़ी विचित्र होती है। आज वह अठारह वर्ष से अंधे हो गए हैं। अब वह राजकाज छोड़कर तपस्या कर रहे हैं। आइए, मैं आपको उनसे भेंट करा लाऊँ।" बालक के मुँह से इस तरह की मीठी-मीठी बातें सुनकर सब लोगों को बड़ा अचंभा हुआ। इतने बड़े राजा को अपने प्यारे पुत्र-सहित जंगल में रहते सुन उन लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह बोले—"राजकुमार!" बस, इतना सुनते ही बालक ने मंत्री को रोक दिया और कहा—"महाशय, आप मुझे राजकुमार न कहिए; क्योंकि मैं ऋषि-पुत्र हूँ। आप कृपा कर

मेरा नाम सत्यवान कहकर पुकारें। मैं राजकुमार कहलाने के योग्य नहीं हूँ। यदि मैं राजकुमार होता, तो राजभवन में रहता।"

सत्यवान को देखते ही सावित्री के मन में एक अपूर्व भाव जाग उठा। वह सत्यवान के रूप-लावण्य देखते एवं मधुर वचन सुनते ही मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। वह सत्यवान को श्रद्धा एवं पूज्य भाव से देखने लगी। जिस तरह किसी कंगाल मनुष्य को बहुत धन मिल जाने पर हर्ष होता है, उसी तरह आज सावित्री को प्रसन्नता हुई। यद्यपि अभी सावित्री के विवाह की कोई चर्चा नहीं थी, तथापि न-जाने आज उसके मन में इस तरह के भाव क्यों आने लगे। जैसे नीले आकाश में चंद्रमा शोभा देता है, उसी तरह इस समय सावित्री के मन में वह मूर्ति शोभा देने लगी। आज तक सावित्री ने न-जाने कितने देश, कितने आश्रम देखे थे; पर ऐसी शोभा उसे कहीं भी दिखाई न पड़ी थी। राजपुत्र को वल्कल के कपड़े तथा सिर पर जटाजूट बाँधे देख सावित्री का मन मुग्ध हो गया। वास्तव में सावित्री ने ऐसा युवक आज तक कहीं भी नहीं देखा था।

राजमंत्री ने फिर कहा—"सत्यवान ! आप राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं, यह जानकर मुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई। आप

हम लोगों को भी राज-अतिथि समझिए। मैं भद्रदेश के राजा अश्वपति का मंत्री हूँ। मेरे साथ जो यह रथ पर बैठी हैं, वह उनकी एक-मात्र कन्या सावित्री हैं। यह इस समय तीर्थ-यात्रा करने को निकली हैं। चलो, आज हम भी तुम्हारे पूज्य पिता के दर्शन कर अपने को धन्य करें।" सावित्री का नाम सुनकर सत्यवान ने एक बार उसकी ओर देखा। सावित्री के सौंदर्य को देखकर वह टकटकी-सी लगाकर उसकी ओर देखने लगा। सावित्री ने भी पुलकित नेत्रों से उसकी ओर देखकर अपने को कृत-कृत्य समझा। सत्यवान के विनयभरे शब्दों को सुनकर सब लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई।

जब राजमंत्री मुनि के आश्रम में पहुँचे, तब क्या देखते हैं कि एक बड़े वृक्ष के नीचे दो स्त्री-पुरुष बैठे हैं। वे इस समय वृद्ध हो गए हैं। अपने नेत्र बंद किए तपस्या में मग्न हैं। जब अंधमुनि ने और उनकी अंधधर्मपत्नी ने सुना कि आज हमारे आश्रम में राजा अश्वपति की प्यारी पुत्री सावित्री अतिथि होकर आई हैं, तब उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे दोनो बहुत प्रसन्न हुए। कन्या सावित्री ने भी मुनि के पास जाकर उनके चरणों में प्रणाम किया। राजकन्या का ऐसा गुण देख मुनि के आनंद की सीमा न रही। उन दोनो ने अपने दोनों हाथ उठाकर सावित्री को आशीर्वाद दिया।

मुनि ने राजमंत्री से कुशल-प्रश्न पूछकर अपने पुत्र सत्य-वान को बुलाया और कहा—"बेटा, ये राज-अतिथि हैं। इनके आतिथ्य में किसी प्रकार की कमी न करना।" अपने पिता की आज्ञा सुनते ही आज्ञाकारी सत्यवान बड़े यत्न से अपने माता-पिता की आज्ञा पालन करने लगा।

इस वन में अंधमुनि के सिवा अनेक मुनि और भी रहते थे। जब उन लोगों को सावित्री का आना मालूम हुआ, तब वे, एक-एक करके सब, राजकन्या को देखने के लिये आए। मुनियों के साथ उनके बालक और बालिकाएँ भी आई थीं। वे सब सावित्री के चारो ओर खड़ी हो गईं। इस समय सावित्री के रूप की शोभा और भी बढ़ गई। वह उनके बीच में ऐसी मालूम होने लगी, मानो वह सबको रानी हो।

सावित्री मुनि-बालिकाओं का प्रेम देख बहुत प्रसन्न हुई। वह उनके हाथ में अपना हाथ डालकर यहाँ-वहाँ घूमने चली गई। शाम को ऋषि-पत्नियाँ भी सावित्री से भेंट करने को आईं और उसे आशीर्वाद देकर उसकी यात्रा का हाल पूछने लगीं। सावित्री ने भी उन्हें अपनी यात्रा का वर्णन अच्छी तरह से सुनाया। सावित्री का यह स्वभाव-सा बन गया था कि वह रात के समय, अपने राजमहल में रहने पर, मुनि की स्त्रियों के तपोवन में रहने के सुख-दुःख को पूछती थी। यहाँ भी

सावित्री ने यही किया। अपने सुख-दुःख का नाम सुनते ही वे बोल उठीं—"राजकुमारी, यद्यपि यह सत्य है कि राजमहल में रहने से आप लोगों को बड़ा सुख मिलता है; आप विना सवारी के एक क़दम भी नहीं चल सकतीं; पर आप लोग वह पर इसी तरह रहती हैं, जैसे गूलर के फल में पंखियाँ वास करती हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि आपको राजा ने ईश्वर की लीला दिखाने को अपना जी कड़ा करके तीर्थ-यात्रा करने को भेज दिया है। यदि तुम हमारे साथ सुबह वन की शोभा देखने चलो, तो तुम्हें मालूम हो जाय कि वन में किस तरह के आनंद मिलते हैं।"

जैसे-तैसे रात व्यतीत हुई। भगवान् भास्कर ने सब लोगों को अपने काम में लग जाने के लिये अपनी अवाई की सूचना बादलों को स्वर्ण-वर्ण करके दे दी। प्रातःकाल का होना देखते ही सब ऋषि-मुनि अपने-अपने स्थान से जागकर पास ही बहनेवाली नदी पर गए और वहाँ स्नानादि कर भगवान् के भजन-पूजन में लग गए। न-जाने कितनी जगह से शंख और झाँझों का शब्द सुनाई देने लगा। पक्षीगण भी अरुणदेव का स्वागत करने को अपनी खोलों में से मुँह निकालकर चहचहाने लगे। सुबह होते ही जहाँ-तहाँ गो-दोह होने लगा। पश्चात् अनेक मुनि-बालक अपनी गायों को

चराने चले गए। कुछ दिन-चढ़े मुनि-बालिकाएँ सावित्री को वन की शोभा दिखाने के लिये लिवाने को आ गईं। इधर राजमंत्री ने आगे चलने की तैयारी की। किंतु सावित्री ने उन्हें आगे जाने से रोक दिया। पश्चात् वन की शोभा देखने को चली गईं।

सावित्री आज तक न-जाने कितने तपोवन देख चुकी थी; पर आज उसे जितनी अच्छी यहाँ की शोभा दिखाई दे रही थी, उतनी अच्छी शोभा उसे और कहीं भी दिखाई न पड़ी थी। सावित्री को ऐसा मालूम हुआ, मानो यहाँ सुख के सिवा दुःख का तो नाम-निशान तक नहीं है। जहाँ देखा, वहाँ आनंद-ही-आनंद दिखाई पड़ा। तपोवन में चारो तरफ़ शांति दिखाई दे रही थी। मोर झुंड-के-झुंड मिलकर नाच रहे थे। कोयल अपने पंचम स्वर से अलाप रही थी। अनेक वृक्षों पर मालती-लता इस तरह लिपटी हुई मालूम पड़ती थी, मानो अपने भाइयों से भेंट करने को तैयार हो। वृक्षों के नीचे फूल इस तरह फैले हुए थे, मानो वे वृक्ष सावित्री का आना सुनकर उसकी थकावट को दूर करने के लिये पहले से ही फूलों का बिस्तर बिछाकर उसका स्वागत करने को तैयार हों। अनेक वृक्षों पर तोता और मैना बैठे-बैठे मंत्र-से पढ़ रहे थे। क्यों न हो, जो जैसी संगति करता है, उसे वैसा ही गुण

अवश्य मिलता है। तोता-मैना मुनियों के भजन सुनकर यदि उन्हें दुहरावें, तो इसमें क्या आश्चर्य है। हिरनों के बच्चे हरी दूब के ग़लीचों पर प्रसन्नता-पूर्वक नाच रहे थे। कभी वे मुनि-बालकों के शरीर से अपना शरीर रगड़ते, तो कभी उन्हें छूने के लिये उनके पीछे-पीछे दौड़ते थे; कभी दूब पर मुँह रखकर उसे खाने लगते थे। कहीं पर मुनि-बालक हवन के लिये लकड़ियाँ लिए जा रहे थे। कोई दूब और फूल एकत्र करने को अपनी-अपनी टोकरियाँ लिए वृक्षों के नीचे घूम रहे थे। कहीं मुनि उच्च स्वर से मंत्र पढ़कर हवन कर रहे थे। वेदी का धुआँ चारो ओर श्वेत साड़ियों के समान दिखाई दे रहा था। निर्मल जल के झरने मंद-मंद शब्द करते हुए नदियों की ओर दौड़े जा रहे थे नदियाँ कल कल शब्द करती हुई बह रही थीं। उनमें वेदी के अधजले वल्कल क़तार-सी बाँधे हुए थे। सरोवरों में जहाँ-तहाँ कमल फूले हुए ऐसी शोभा दे रहे थे, मानो सावित्री को देखकर उसकी भेंट में वे फूल अर्पण करने को तैयार हों। उनमें हंस अलग ही कल्लोल कर रहे थे।

इन दृश्यों ने सावित्री का मन और भी मोहित कर लिया। वह अपने मन में सोचने लगी—"धन्य हैं यहाँ के निवासी और यहाँ की शोभा। देखो, यहाँ पर जो सुख दिखाई

देते हैं, वे राजमहल में रहनेवालों को किस तरह मिल सकते हैं ! सचमुच इनके समान सुखी और कौन हा सकता है ! जहाँ वृक्ष मुनियों के भोजन के लिये सादर फल लिए तैयार हैं, और नम्रता उनकी डालियाँ नीचे को झुका रही है, वहाँ किस बात की चिंता !" सावित्री के साथ मुनि-कन्याएँ अनेक खेल भी खेलती जाती थीं। कोई छिप जाती, कोई फूल बीनने की होड़ लगाती थी। इस प्रकार उन लोगों का आमोद-प्रमोद देख सावित्री के आनंद की सीमा न रही। मुनि-कन्याओं को खाने-पीने की तो कोई फ़िकर थी ही नहीं। वे पेड़ों में से मनचाहे फल तोड़कर खाती जाती थीं। सावित्री भी उन्हीं कन्याओं के साथ फल-फूल तोड़कर खाती थी। आज का दिन सावित्री को इस तरह जाता हुआ मालूम पड़ा, मानो आज सूर्य भगवान्, एक या दो घंटे ही रहकर, इन लोगों का आनंद न देख सकने के कारण शीघ्र ही अस्ताचल पर चले गए हों।

संध्या होने लगी। गाएँ अपने बछड़ों को पुकारती हुई आश्रम की ओर दौड़ने लगीं। सावित्री की सखियाँ और मुनि-कन्याएँ भी भगवान् भास्कर को आराम करने के लिये जाते देख अपने आश्रम की ओर लौट पड़ीं। आश्रम में लौटकर सावित्री ने वहाँ एक नया ही दृश्य देखा। मैदान

खुला था। मंद-मंद वायु बह रही थी। दूब के ऊपर मुनि-बालक बैठे स्तोत्र-पाठ कर रहे थे। चिड़ियाँ वृक्षों पर बैठकर उनकी धुनि-में-धुनि मिला रही थीं। मुनि-बालकों के मुख से निकले हुए शब्द चारो ओर गूँज रहे थे। उनकी इस मंद ध्वनि ने सावित्री के मन को एक पवित्र भाव में लगा दिया। इन बालकों के साथ सावित्री का प्राणवल्लभ सत्यवान भी था। सावित्री ने सत्यवान के मुख से निकलते हुए वेद-वाक्यों को बड़े ध्यान से सुना। उसे ऐसी प्रसन्नता हुई, जैसी इस जीवन में कभी भी न हुई थी। सत्यवान के पवित्र भावों ने तथा उसकी मुसकिराती हुई मनोहर मूर्ति ने सावित्री को इस समय इस प्रकार कर दिया, मानो वह स्वर्गीय सुख ले रही हो। वह आनंद-विभोर हो गई।

संध्या का भजन-पूजन बंद होने पर जहाँ-तहाँ से गायों के दुहने का शब्द सुनाई देने लगा। सबोंने भगवान् को फल-फूल अर्पण कर भोजन किया। सावित्री को भी इसमें से कुछ भाग मिला। भोजन कर चुकने के बाद सावित्री बूढ़े मुनि और उनकी वृद्ध पत्नी के पास गई। वहाँ जाकर सावित्री अनेक धर्म-कथाएँ सुनने लगी। अनेक सुंदर कथाएँ और उपदेश सुनकर सावित्री का मन मुग्ध हो गया। उन पवित्र कथाओं के सुनने के लोभ से सावित्री, जो पहले कभी विना पलँग के नहीं सोई

थी, आज उस क्षुद्र कुटी में तिनकों के ऊपर ही सो रही। अपने प्राणों से प्यारी राजकन्या को धरती पर सोती देख उनके साथवाली सखियों ने भी अपने कपड़े धरती पर बिछा लिए, और वे भी वृक्षों के नीचे सो गईं।

सबेरा होते ही सावित्री ने मुनियों से जाने की आज्ञा माँगी। सावित्री को अपने आश्रम से जाते देख मुनि-कन्याओं और मुनि-बालकों की आँखों से प्रेम के आँसू बह चले। अहा! एक ही दिन में उन लोगों में जितना प्रेम बढ़ गया, वह अकथनीय है। वनवासी कैसे मिलनसार और शुद्ध हृदय के हैं। उनका कैसा अकृत्रिम प्रेम है। सब लोग सावित्री की ही ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। उस समय का यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था, मानो वे लोग अपने किसी प्यारे से बिछुड़ रहे हों। वृद्ध मुनि ने सत्यवान से रथ सजाने के लिये सारथी को कहला भेजा। आज्ञाकारी पुत्र अपने पिता की आज्ञा पालने को सारथी के पास गया। इसी समय मुनि ने सावित्री से पूछा—"बेटी, अब तुम कहाँ जाओगी?" ऋषि के मुँह से इस प्रकार सुनकर लज्जा-सहित सावित्री ने कहा—"पिताजी, अब आगे जाने की इच्छा नहीं है। अब तो हम अपने राज्य को ही वापिस जायँगे।" मुनि की स्त्रियों ने सावित्री को जाते समय तरह-तरह के आशीर्वाद दिए और कहा कि बेटी फिर भी कभी आश्रम की सुध लेना।

रथ सजकर तैयार हो गया। वृद्ध मंत्री ने सावित्री को रथ पर बैठाकर पूछा—"बेटी, आज किस तरफ़ यात्रा करोगी ?" सावित्री ने कहा—"मंत्रीजी, अब तो मेरा विचार आगे जाने का नहीं है। माता-पिता को छोड़े बहुत दिन हो गए। उनके दर्शनों की इच्छा मेरे मन को व्याकुल कर रही है। वे आज रात को स्वप्न में भी मुझे दीखे, इस कारण अब अपने घर की ही ओर रथ ले चलो।" यद्यपि सावित्री का रथ घर की ओर जा रहा था; पर उसका मन सत्यवान की ही ओर लगा था। वह बार-बार उस सुंदर मूर्ति को देखती थी; पर उसका मन तृप्त नहीं होता था। जैसे भोर होते समय निशानाथ को अस्ताचल की ओर जाते देखकर कुमुदिनी मन-ही-मन सकुचकर कुम्हलाती जाती है और उसका खिला हुआ मुख मलिन पड़ता जाता है, इस समय ठीक वही दशा सावित्री की हो रही थी। सत्यवान ने भी जाते समय सावित्री की ओर एक बार प्रेम से देखा।

वृद्ध मंत्री सावित्री के मन की बात ताड़ गए। वह अपने मन में अपने को धन्य-धन्य समझने लगे। उन्होंने सारथी से राज्य की ओर चलने को कहा। मंत्री की आज्ञा पाते ही सारथी ने अपना रथ बढ़ाया। सावित्री के रथ के पीछे और भी साथ के रथ चले। रथ वन, पर्वत, नदी आदि को पार करता हुआ भद्रदेश की सीमा पर पहुँच गया।

तीसरा अध्याय

सावित्री अपने पिता की राजधानी में पहुँच गई। राज-कन्या का आना सुनकर सभी दास-दासी, सारथी, मंत्री उसे देखने को खड़े हो गए। नगर की स्त्रियाँ और बालिकाएँ सावित्री को तीर्थ-यात्रा से लौटी जानकर मंगल-गान करने लगीं। परंतु राजा बड़े विस्मय में पड़े। वह सोचने लगे—"हाय! न-जाने सावित्री इतनी जल्दी क्यों लौट आई। उसके सोलह वर्ष पूरे होने को आए। हमारे भाग्य ने वहाँ भी पीछा न छोड़ा। सावित्री अगर बिना अपना मनोरथ पूर्ण किए ही लौट आई है, तब तो यह बड़ा अनर्थ हुआ।" अपने मन में इस प्रकार विचार लाते ही वह बहुत डरे। उन्होंने कन्या को सभा में बुलाया।

मुनियों के उपदेश सुनने और उनका सत्संग करने से सावित्री के मन के पवित्र भाव और भी बढ़ गए थे। उसके ऊपर पवित्रता की ज्योति-सी झलक रही थी। वन में तरह-तरह की स्वच्छ हवा मिलने के कारण सावित्री का रूप और भी बढ़ गया था। उसके मन पर प्रसन्नता के भाव दिखाई देते थे। सभा-भवन में आते ही सब लोग सावित्री को एकटक होकर

देखने लगे। सबोंको यही मालूम हुआ कि सावित्री सभा में नहीं आई, बल्कि एक उज्ज्वल ज्योति ने आकर सभा में उजेला-सा कर दिया है। सावित्री को देखते ही सब लोग दंग रह गए।

इसी समय राजसभा में नारदजी भी आ गए। वह हमेशा देशाटन ही किया करते थे। इन्होंने अच्छे कामों में विघ्न डालना अपना कर्तव्य-सा बना लिया था। इन्होंने सोचा—"इस समय राजा अश्वपति के पास जाकर सावित्री के विवाह के संबंध में कुछ बातें कह आना चाहिए। कारण यह कि सावित्री इस समय अपना वर पसंद कर अपने घर की ओर लौट रही है। चाहे कुछ हो जाय, पर सावित्री का विवाह सत्यवान के साथ न होने दूँगा। यदि मेरी बातों को राजा न मानेंगे, तो उनसे कह दूँगा कि यदि आप सावित्री का विवाह सत्यवान के साथ करना चाहते हैं, तो कर दीजिए; पर वह एक ही साल में मर जायगा। अपनी कन्या को कोई जन्म-भर विधवा बनाकर नहीं रख सकता। फिर तो राजा को मेरी बात माननी पड़ेगी।" नारदजी को कलह तो प्रिय था ही; क्योंकि वह तो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था; किंतु वह बड़े अच्छे थे। वह किसी का बुरा नहीं चाहते थे; चाहते सिर्फ यही थे कि किसी के बने-बनाए

काम में विघ्न डालकर दूर हो जायँ और तमाशा देखें। ऐसा करने में भी वह कुछ गुप्त बातें रखते थे। वह हमेशा यही सोचा करते थे कि यदि किसी मनुष्य के पास धन ख़ूब है, तो वह धन का दान कर लोगों को प्रसन्न कर सकता है। जो सब तरह के सुखी है, यदि वह अपने सुख में से किंचित् सुख दूसरों को दे दे, तो इसमें उसकी क्या बड़ाई है। जो विपद् में पड़कर अपने साधुपने की रक्षा कर सके, अनेक प्रकार के दुःख भोगकर भी अपने धर्म को अटल रक्खे, अपने प्राण जाने का भी समय देख कभी बुरे रास्ते पर न चले, हमेशा अपने धर्म की रक्षा करता रहे, वही सच्चा मनुष्य है। अपने मन में इसी प्रकार सोचकर नारदजी हमेशा लोगों को झगड़ों में डालकर उनकी परीक्षा लिया करते थे। सोनार जिस तरह सोने को कसौटी पर रखकर उसके खोटे या खरे की परीक्षा करता है, उसी तरह नारदजी भी लोगों को संकट में डालकर उनके गुणों की परीक्षा करते थे। उनके इस काम से मनुष्यों का उपकार होता था। वे सच्चे मार्ग पर चलनेवाले बन जाते थे। अनेक कष्ट आने पर भी अपने धर्म को नहीं जाने देते थे। यही कारण है कि आज तक भारत-वर्ष में सनातनधर्म की ही विजय बनी रही है। न-जाने हिंदुस्थान से इस धर्म को विलग करने के लिये कितने

लोगों ने अपने सब उपाय कर छोड़े, कितने धर्म यहाँ फैलाए गए, कितने धर्मावलंबी राजों का राज्य रहा; पर सनातनधर्म सब कठिनाइयों को सहन करता हुआ, अनेक दुःखों को भोगता हुआ अपने पहले रूप में ही अटल है। आजकल भी इस भारतवर्ष में आप लोग देख ही रहे हैं कि कितने धर्मवाले मनुष्य रहते हैं; पर यह देश सनातनधर्म-वाला ही कहलाता है। कई लोगों की परीक्षा होते देख बाक़ी लोग भी सचेत हो जाते थे, और वे भी अपना सच्चा मार्ग कभी न त्यागते थे। आप लोग यह जानते ही हैं कि जब शिक्षक किसी बालक को, उसका अपराध बताकर, कक्षा के बालकों के सामने सज़ा देता है, तब सब बालक यही सोचने लगते हैं कि भाई ! हम भी कभी ऐसा काम न करेंगे; नहीं तो हमको भी इस बालक के समान सज़ा भोगना पड़ेगी। जब छोटे-छोटे बालकों की इस तरह धारणा-शक्ति होती है, तब बड़े मनुष्यों का क्या कहना है ! वे तो इन बातों को देखकर ही कोसों दूर भागने लगेंगे।

नारदजी जब लोगों की इस तरह परीक्षा करते थे, तब तो उस समय के लोगों की धारणाशक्ति का पूछना ही क्या था ! सब लोग हमेशा यही चिंता करते रहते थे कि शायद यह हमारी परीक्षा न करता हो। जो लोग मुनि की परीक्षा में पास

हो जाते थे, उनको सर्टिफ़िकेट के काग़ज़ के बदले में उनकी कीर्ति का सनद-पत्र दिया जाता था। वह सनद-पत्र सबको भली भाँति विदित हो जाने पर उन मनुष्यों की कीर्ति संसार-भर में फैल जाती थी। जो मनुष्य इस परीक्षा में फ़ेल हो जाता था, उसको फिर अपना चरित्र सुधारने को चिंता पड़ जाती थी। इस तरह नारदजी का कार्य भी सिद्ध हो जाता था, और वह लोगों के नेत्रों में अपने उपकारी भाई के समान प्रिय भी बने रहते थे।

जब नारदजी को लोगों ने राजसभा में आते हुए देखा, तो सब खड़े हो गए। वे देखते क्या हैं कि उनके शरीर पर रामनाम-अंकित एक डुपट्टा पड़ा है, हाथ में वीणा लिए हैं, सिर के बाल मुड़े हुए हैं, चोटी का जूटा बँधा हुआ है और वह वीणा बजा-बजाकर राम-नाम ले रहे हैं। सावित्री भी नारदजी को अपने पिता की सभा में आया देख खड़ी हो गई। उसने भी नारदजी को प्रणाम किया। अपना इस तरह का आदर देख नारदजी अपने मन में प्रसन्न हुए। राजा ने मुनि के चरण धोए और चरणामृत पान किया; फिर आरती कर उन्हें अच्छे आसन पर बिठाया।

सावित्री को देखकर नारदजी ने मन में कहा—"राजा को परीक्षा लेकर बालिका सावित्री का आदर्श सब लोगों को

दिखा देना चाहिए; क्योंकि संसार में आचरण से ही आत्मबल देखा जाता है। आचरण ही से मनुष्य की बुद्धि और भावना का ठीक-ठीक पता लगता है। मनुष्य कैसा है, भला या बुरा, यह बात उसके कामों से ही जानी जाती है। जिसका आचरण भले कामों के अनुकूल होता है, उसे लाग भला कहते हैं, और जो इसके विपरीत चलता है, वह सबोंकी नज़र में बुरा गिना जाता है।" अपने मन में इस तरह विचारते हुए नारदजी ने राजा से कहा—"महाराज! आपकी कन्या तो अब १६वें वर्ष में लग गई; पर आपने आज तक इसका विवाह न किया। इस बात का मुझे अधिक खेद है। इस बालिका में किसी प्रकार का दोष भी नहीं है, जिससे मैं यह समझता कि राजा ने इस कारण से अब तक इस बालिका का विवाह नहीं किया! यह अभी बहुत-से सामान के साथ कहाँ से आ रही है? क्या कहीं घूमने गई थी?"

यद्यपि नारदजी को कई बातें मालूम रहती थीं; पर वह अपना काम साधने को इसी तरह पूछा करते थे; मानो कुछ जानते ही न हों। क्योंकि ऐसा करने से उनका काम सफल हो जाता था।

नारदजी के मुँह से इस प्रकार सुनते ही राजा बोले—"प्रभो! यह मेरे ही भाग्य का फेर है। मैं आपसे इस विषय में

क्या कह सकता हूँ !" यह कहते ही राजा अधीर हो गए और बोले—"महाराज ! आप तो जानते ही हैं कि मैंने इस पुत्री को कितने कठिन परिश्रम से पाया है ! किंतु विधि का लिखा कहाँ जाता है ! उन्होंने भाग्य में संतान का दुःख ही लिख दिया है। मैंने पुत्र पाने को तपस्या की थी; पर उन्होंने मुझे पुत्री दी। फिर भी उसे इतना रूप दे दिया, जिससे उसके साथ विवाह करने को कोई राजकुमार राज़ी तक नहीं होता। जब मैं अपने सब उपाय कर चुका, तब मैंने सावित्री को ही वर ढूँढने के लिये भेजा था। सो वह भी जल्दी लौट आई। न-जाने अब हमारे भाग्य में और क्या-क्या बदा है। सावित्री अभी ही मेरे पास आई है, इस कारण उससे यात्रा का हाल नहीं पूछ पाया था। बड़ी ख़ुशी की बात है कि ऐसे समय पर आप भी यहाँ आ गए। अब सब बात आपको और मुझको विदित हो जायगी।" नारद-जी से इस प्रकार कहकर अश्वपति ने सावित्री की ओर अपनी प्यारभरी दृष्टि से देखा और कहा—"बेटी ! अपनी यात्रा में तूने क्या-क्या देखा, यह नारदजी को भी सुना दे। साथ-साथ हम लोगों को भी तेरी यात्रा का हाल सुनने की बड़ी इच्छा हो रही है। जो कुछ हो साफ़-साफ़ कह देना, इसमें लज्जा की कोई भी बात नहीं है; क्योंकि मैं यह पहले से ही जानता हूँ कि तू लज्जा के कारण अनेक बातें मुझसे नहीं कहती थी। लज्जा तो स्त्री का

परम गुण ही है। जिस स्त्री में लज्जा नहीं है, जो अपने कुल का बिलकुल ही ध्यान न कर लज्जा त्याग देती है, उससे वह और उसका कुल, दोनों बदनाम हो जाते हैं। पर यह लज्जा का अवसर नहीं है।"

अपने पिता के मुँह से इस प्रकार उपदेश-पूर्ण वचन सुनकर आज्ञाकारिणी सावित्री की गर्दन नीची हो गई। उसने लज्जा के साथ धीरे-धीरे अपनी यात्रा का हाल कहना शुरू कर दिया। सावित्री के इस प्रकार कहने पर नारदजी अपने मन में कहने लगे—"लज्जा ईश्वर ने स्त्री को क्या ही अच्छा भूषण दिया है; किंतु अनेक बालक और बालिकाएँ इसका अधिमात्रा में प्रयोग कर अपने सच्चे गुरु और माता-पिता का भी कहना टाल देते हैं, उनकी दी हुई आज्ञा को यथाविधि नहीं मानते। सावित्री तुमको धन्य है, जो अपने पिता की आज्ञा पालन करने तथा उनका दुःख दूर करने को स्वतः अपना बर ढूँढने चली गई। आज भी अपने पिता की आज्ञा पालने को इतनी भरी हुई सभा में किस तरह निःसंकोच होकर अपनी पूरी यात्रा का हाल सुना रही है! इसकी बातें कितनी मधुर और रसीली मालूम पड़ती हैं! जी चाहता है कि सदा ये ही बातें सुनता रहूँ। वह जिस समय किसी पर्वत या भयंकर स्थान का हाल कहती है, उस समय मेरा मन यहाँ पर बैठे-बैठे डरने लगता है। पर

सावित्री की बातों से यही जान पड़ता है कि उसे किंचित् मात्र भी कष्ट या दुःख नहीं हुआ।" अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए अंतिम समय में तो सावित्री ने अपनी लज्जा को मानो कोसों दूर फेक दिया। वह निस्संकोच कहने लगी—

"पिताजी! जब मैं एक वन में पहुँची, तब मुझे वह वन बड़ा ही भला जान पड़ा। जैसी सुंदरता मुझे उस वन में दीखी, वैसी आज तक मैंने किसी भी वन में नहीं देखी। उस वन में शाल-देश के राजा द्युमत्सेन तपस्या करते हैं। उनको वहाँ रहते आज १८ वर्ष हुए। ईश्वर की इच्छा बड़ी प्रबल होती है। जिस समय वह राजा राज्य करते थे, उसी समय उनके दोनो नेत्रों की ज्योति जाती रही थी। उनका एक पुत्र सत्यवान है। वह उस समय बिलकुल ही छोटा था। राजा की आँखें चली जाने से वह राज्य का काम भली भाँति न कर सके। राजा को निर्बल समझ शत्रुओं की बन आई। उन्होंने बेचारे राजा को राज्य से अलग कर दिया और आप राजा बन बैठे। उसी समय से राजा भी राज्य की चिंता छोड़कर बन में तपस्या कर रहे हैं। मैंने उन्हीं के पुत्र सत्यवान को वरण किया है।"

सावित्री की इच्छा पूरी हो गई देख राजा का मन एकदम प्रसन्न हो गया। उन्होंने अपने मन में कहा—"यह बात ठीक

हो गई। सावित्री ने अपना पति राजकुमार ही को वरण किया। क्यों न हो, मनुष्य पर शिक्षा का असर अवश्य ही पड़ता है। मैंने आज अपनी पूर्ण मिहनत को सफल समझा।"

अश्वपति के मन का भाव समझकर नारदजी अपने मन में विचार करने लगे—"जैसी योग्य कन्या है, वैसा ही उसका पिता भी है। यदि कोई मनुष्य सुनता कि मेरी पुत्री का विवाह एक दरिद्र राजकुमार के साथ होता है और वह वनवासी भी है, तो उसे कितना दुखः होता; पर राजा को उलटी खुशी हो रही है।" सावित्री की बात पूरी होते ही नारदजी ने कहा—

"बेटी सावित्री ! क्या तुमने सत्यवान को वरण किया है ? हरे ! हरे ! भला किसी काम को करने के पहले कुछ सोचना और समझना भी तो चाहिए ! सहसा ही विना विचारे काम करने से कितने दुःख होते हैं, यह तुमको अभी मालूम नहीं है। यह तुमने बड़ी भारी भूल की है।" इस तरह कहकर नारदजी बार-बार पश्चात्ताप करने और ऊपरी भाव से सावित्री की ओर एकटक देखने लगे। किंतु सावित्री को क्या था, वह ज्यों-की-त्यों स्थिर भाव से खड़ी रही। उसके मन में किंचित् शंका और दुःख न हुआ। नारदजी का ऐसा भाव देखकर सारी सभा काँप उठी। सब लोगों के गले सूख

गए। सब लोग अपने मन में विचार करने लगे—"न-जाने ईश्वर क्या करनेवाला है! जैसे-तैसे वर भी मिल गया, तो अब कौन-सी विपत्ति सिर पर आ रही है।" राजा का मन तो बिलकुल ही अधीर हो उठा। वह बड़े ही गंभीर भाव से नारदजी से बोले—"प्रभो! क्या सावित्री ने एक ग़रीब वर को पसंद किया है? उसका रूप, गुण, शील नहीं देखा? इस कारण आप दुःखी हो रहे हैं या कोई अन्य कारण है? जो बात हो, वह आप शीघ्र ही बता दें; क्योंकि इस समय मेरा मन बहुत ही घबरा रहा है। क्या सत्यवान जितेंद्रिय नहीं है?"

राजा की बातें सुनकर नारदजी बोले—"सत्यवान हर तरह से सावित्री के योग्य है। उसके समान जितेंद्रिय और रूप, गुण तथा कुलवाला वर आपको इस संसार में मिलना कठिन है। वह राजपुत्र है, ब्रह्मचारी है। सावित्री का विवाह यदि ऐसे वर के साथ न हो, तो फिर और किसके साथ होगा!"

अश्वपति बोले—"तो क्या सत्यवान के पिता वनवासी हैं, दरिद्र हैं, अंधे हैं, इस कारण आप इतनी चिंता कर रहे हैं? यदि यह बात है, तो मुझे इस बात की कौन चिंता है? आप तो जानते ही हैं कि मेरे कोई पुत्र नहीं है। फिर यदि सत्यवान दरिद्री भी है, तो क्या फ़िक्र है? यह राज्य तो उसी का है। फिर बताइए, वह दरिद्र कैसे रह सकता है? हम लोग वृद्ध हुए।

अब हमें यही चिंता लगी है कि किसी प्रकार सावित्री का विवाह कर उसे यह राज्य सौपें, और हम वन में जाकर एकाग्र-चित्त से, संसार की सब झंझटें छोड़कर, ईश्वर का भजन करें।"

राजा की बात पूरी होते ही नारदजी बोले—"राजन्! यह क्या कहते हो! राजपुत्र यदि मुनियों के साथ रहकर उनसे शिक्षा-संयम और नीति आदि ग्रहण करता है, तो यह बात उसका गौरव बढ़ानेवाली है। इस काम से उसकी निंदा कभी नहीं हो सकती।"

राजा से फिर भी न रहा गया। वह बहुत व्याकुल हो उठे और बोले—"प्रभो, यदि ऐसे गुण सत्यवान में हैं और सावित्री ने उसे वरण किया है, तो कौन-सी भूल की? मेरा मन इस समय बहुत ही डर रहा है, कृपा कर आप शीघ्र बताइए, जिससे मेरे मन की शंका दूर हो जाय।"

नारदजी बोले—"राजन्! सत्यवान के साथ यही कहावत चरितार्थ है कि 'जिसकी यहाँ चाह है, उसकी वहाँ चाह है'। यद्यपि सत्यवान सब गुणों से पूरित है, उसमें कोई भी दोष नहीं है, फिर भी देखिए ईश्वर की कृपा कैसी प्रबल होती है! बेचारे बालक को सब गुण तो दिए; पर उम्र न दी। इस कारण वह आज से ठीक १ वर्ष बाद अमुक दिन, अमुक तिथि और अमुक नक्षत्र में, सदा के लिये आराम करने के निमित्त, स्वर्ग को चला

जायगा। यह बात तो उसके भाग्य में ही लिखी है। मुझे उसका मिटानेवाला कोई नहीं दीखता। भला आप ही सोचिए, कौन ब्रह्मा का लेख मेटने की हिम्मत रखता है।"

बस, अब क्या था, नारद-मुनि की यह बात सुनते ही सारी सभा शोक से व्याकुल हो गई। जो जहाँ बैठा था, वैसा बैठा ही रह गया। किसी के मुँह से आवाज़ तक न निकली। उनके शरीर इस तरह मालूम पड़ने लगे, मानो वे सब काठ के पुतले खड़े हों। जिस तरह पास में बिजली गिरने से लोग ज्यों-के-ज्यों रह जाते हैं, ठीक यही दशा पूरी राजसभा की हो रही थी। राजा की चिंता का हाल तो पूछना ही क्या था, उनके ऊपर तो वज्र ही आ गिरा था। कुछ समय के बाद राजा अपने दुःख के वेग को सँभालते हुए बोले—"महर्षि, हम तो समझते हैं कि वहाँ भी हमारे भाग्य ने पीछा न छोड़ा। मेरी इतनी सारी मिहनत व्यर्थ गई। अब मुझे भली भाँति विदित हो गया कि जगत्-पिता ने सावित्री का वर इस संसार में पैदा ही नहीं किया। भला! ऐसा कौन पिता होगा, जो सब बातें जानकर भी अपने प्राणों से प्यारी पुत्री को जलती आग में फेंक दे! इससे तो यही ठीक है कि सब लोग यही कहें कि सावित्री का अभी विवाह ही नहीं हुआ।"

नारदजी हाँ में हाँ मिलाने से कब रुक सकते थे। उन्होंने

राजा की बात को पक्की बतलाने के लिये और भी एक-दो बातें मिला दीं।

अश्वपति ने फिर अपनी पुत्री सावित्री की ओर मुँह करके कहा—"सुनो बेटी, मेरी बुद्धि में तो यही आता है कि ईश्वर ने तुझे इस संसार-सागर में सुख लिखा ही नहीं है। अब तू अपना विचार बदल दे और किसी दूसरे राजकुमार को वर। भला, ऐसी कम आयुवाले के साथ मैं तेरा विवाह कैसे कर सकता हूँ?"

राजा के इस प्रकार कहने पर सावित्री क्या उत्तर देती है, यह सुनने को नारदजी बहुत ही व्याकुल थे। यह उनकी परीक्षा का बिलकुल अंतिम समय था। सिर्फ़ फल निकलने की देर थी।

अपने सतीत्व की मर्यादा के लिये तथा सती धर्म का स्थापन करने के लिये सावित्री ने कोमल वचनों में कहा—"पिताजी, आप तो यह जानते ही हैं कि मैं आपकी आज्ञा को जन्म-भर कभी भी नहीं टाल सकती; पर सिर्फ़ एक विनय करती हूँ। यदि आप उस पर विचार करें, तो आपका और मेरा तो भला होगा ही; साथ-ही-साथ इसे संसार में आपका यश भी हज़ारों-लाखों वर्षों तक या यों कहिए कि युग-युगांतर तक बना रहेगा। यह बात मैं सिर्फ़ अपने कर्तव्य के अनुरोध से, सतीधर्म की रक्षा के लिये, आपसे

कह रही हूँ। आशा है कि आप मेरे कहने पर नाराज़ न होंगे। यदि आप भविष्य की बातों के अभी से पुल बाँधना चाहें, तो आप यह कैसे जान सकते हैं कि मेरे भाग्य में आगे और क्या-क्या बदा है, मुझे कितनी तकलीफ़ें उठानी हैं? आपके कहे अनुसार करने से एक तो मेरा धर्म जायगा और दूसरे मेरी अनेक बहनों को मेरा आदर्श भी न मिल सकेगा।"

कन्या के मुँह से इस प्रकार उपदेश-पूर्ण वाक्य सुनकर सारी सभा चकित रह गई। उन लोगों के मुँह से सिवा "धन्य-धन्य" के और कोई ध्वनि न निकल सकी। नारदजी भी सावित्री की बातें सुनकर परम आनंदित हुए। उनका मन प्रेम से भर आया। सावित्री के कहने पर राजा की दुर्बलता भी दूर हो गई। उनके मन में ज्ञान ने एकदम ज्योति-सी जगा दी।

सावित्री के उस समय की कही हुई बातें आजकल स्त्री-समाज में स्वर्ण-अक्षरों में अंकित करने के योग्य हैं। वे बातें आज भी सुनने में बड़ी भली जान पड़ती हैं। बालिका के मुख से निकले हुए वे शब्द प्रत्येक भारत-महिला को कंठाग्र रखना चाहिए। अगर किसी भी महिला के मन में, कभी किसी कारण से, राजा के समान दुर्बलता आ जाय, तो उस समय उसे सावित्री के कहे हुए वाक्यों को याद कर कभी पीछे न हटना चाहिए।

सावित्री ने अपने पिता से कहा—"पिताजी! जीवन में धन का आगम, कन्या का दान और प्रतिज्ञा एक ही बार होती हैं। इन्हें बार-बार कोई नहीं कर सकता। जब मैंने अपने मन से सत्यवान को वरण कर लिया है, उन्हें पति की दृष्टि से देख लिया है, फिर चाहे वह पूर्ण आयु हों या कम, मैं दूसरे को वरण नहीं कर सकती। संसार में यह नियम है कि लोग किसी भी काम को करने के पहले सब तरह से सोच लेते हैं, तब उसे करते हैं। करने के पहले लोग उसे अपने मुँह से कहकर लोगों को बतला भी देते हैं। इन सब बातों में तो अब मेरा मन ही प्रमाण समझिए।"

सावित्री के मुख से ऐसी बातें सुनकर नारदजी अपने मन में सोचने लगे—"धन्य है सावित्री! तेरी बुद्धि! तेरी बातें तो रत्ती-रत्ती ठीक हैं। लोगों के भले या बुरे कामों का विचार पहले उनके मन में ही होता है, पश्चात् वे उस काम को करते हैं। यदि किसी के मन में पाप का उदय हो गया हो, चाहे वह कार्यरूप में न लाया जाय, पर कहलावेगा तो पाप ही। जो लोग पहले से समझ-बूझकर काम करते हैं और फिर भी अंत में उसका परिणाम बुरा निकलता है, तो इसमें करनेवाले का क्या दोष है। अतः जब सावित्री सत्यवान को अपने मन से वरण कर चुकी है, तब तो वह उसका पति बन ही गया,

इसमें संदेह ही क्या है। सावित्री की इस दृढ़ता से भविष्य में होनेवाली स्त्रियों को बहुत शिक्षा मिलेगी और उनके हृदय से विधवापन का भय मिट जायगा।"

अपनी पुत्री के मुँह से इस तरह की उपदेशपूर्ण बातें सुनकर राजा नारदजी से बोले—"प्रभो! सावित्री जो कुछ कह रही है, वह तो बार-बार सत्य है। अब उसे क्या उत्तर देना चाहिए, यह मेरी समझ में नहीं आता।"

नारदजी ने कहा—"राजन्! सचमुच सावित्री जो कह रही है, वह बिलकुल ही सत्य है। उसकी बातें मैं भी नहीं काट सकता। यथार्थ में तुम्हारी कन्या सब बातों में पूर्ण है। वह पक्की स्थिर-बुद्धिवाली है। उसका यह उपदेशपूर्ण वाक्य सुन-कर तो मेरी बुद्धि तक चकरा गई है। मैं भी बड़े आश्चर्य में पड़ा हूँ। मेरी तो अब यही राय है कि आप उसका विवाह सत्यवान के ही साथ करिए। यदि आप ऐसा न करेंगे, तो भी आपका भला नहीं है। जो बालिका ऐसी पवित्र-चरित्र, बुद्धि-मती और साध्वी है, भला उसका बिगाड़ कौन कर सकता है?" नारदजी की इस समय ऐसी दशा हो रही थी, जैसा कि एक कवि ने कहा है—

छलने गए थे भक्त को भगवान् आप छले गए।

—म० गु०

यह कहकर नारदजी सावित्री की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए उसे आशीर्वाद देकर अपनी बीणा बजाते हुए चले गए। मुनि को जाते देख सभा के सब लोगों ने राजा-सहित उन्हें बार-बार प्रणाम किया।

नारदजी के चले जाने पर राजा ने सावित्री से कहा—"बेटी! मैं यह नहीं समझता था कि मेरे भाग्य में ऐसी गुणवती कन्या बदी है। अब तो अवश्य ही मेरा परिश्रम सफल हुआ। तेरे मुख से इस प्रकार तत्त्व से भरी हुई बातें सुनकर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूँ। अब ईश्वर से मेरी बार-बार यही विनय है कि वह तुझे ऐसी ही बुद्धि दे कि तू इसी प्रकार हमेशा अपने धर्म को समझती रहे।"

अपने पिता के मुख से इस प्रकार अपनी बड़ाई सुनकर सावित्री आनंद में विह्वल हो गई। इसी समय सभा-भंग-सूचक शंख भी सब लोगों को अपने-अपने घर जाने की सूचना देने लगा। निदान सब लोग राजा को प्रणाम कर अपने-अपने घर चले गए। राजा भी सावित्री-सहित अपने महल की ओर चले आए।

चौथा अध्याय

महाराज अश्वपति सावित्री के उपदेशपूर्ण वचन सुनकर प्रसन्न तो हुए थे; पर उनके मन की चिंता और भी बढ़ती जाती थी। वह हमेशा यही सोचते थे—'जहाँ जाय भाग, वहीं लगे आग'। निदान कुछ काल बाद राजा ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे कहा—"महाराज, आप तो जानते ही हैं कि पुत्री सावित्री ने राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान को अपना पति बनाना निश्चित किया है। वह इस समय दरिद्री हैं, जंगल में वास करते हैं। भला! ऐसी अवस्था में वह बरात सजाकर सत्यवान को ब्याहने कैसे आ सकते हैं। इस समय न तो उनके पास इतना धन ही है, जिसकी सहायता से वह उतनी दूर से यहाँ तक बड़ी धूम-धाम से आ सकें, न उनके पास इतने नौकर-चाकर ही हैं, जो उनके काम को भली भाँति सँभाल सकें। इन बातों से आप लोग तो यह जान ही सकते हैं कि राजा द्युमत्सेन राजों के समान व्यवहार न कर सकेंगे। ऐसा न करने से राजा को दुःख भी अधिक होगा। देखिए, उनके भी एक ही पुत्र है। यदि वह इस समय शाल-देश के राजा होते, तो उनके आनंद का क्या कहना था! समाज का ऐसा एक नियम-सा है कि यदि किसी का

ज़रा भी हेठापन देखते हैं, तो वह उसके मन पर बहुत दिनों तक पश्चात्ताप का कारण बना रहता है। यदि हम बड़ी धूमधाम से विवाह करें और हमारे समधी कुछ न कर सकें, तो उनके मन पर इससे अधिक और क्या दुःख हो सकता है। मेरे ऐसा करने से उनकी बड़ाई न होकर अपकीर्ति ही होगी। संबंध बराबरवालों से ही ठीक होता है। इससे अब मैं यही सोचता हूँ कि अपने संबंधी की हैसियत के अनुसार ही काम करूँ। वही काम एक या दो मनुष्यों से हो सकता है, वही दो और चार हज़ार आदमी भी कर सकते हैं। अब मेरा यही विचार होता है कि मैं भी वन जाकर अपनी पुत्री का विवाह कर आऊँ। वन में भी यदि मैं बहुत-से आदमी ले जाऊँ, तो एक तो वहाँ पर ठहरने को भी स्थान न मिलेगा, दूसरे राजर्षि को भी बहुत तकलीफ़ होगी।"

ब्राह्मणों ने कहा—"महाराज! आप जो कह रहे हैं, वह बिलकुल सत्य है। इस संसार में धन ही सब काम कर सकता है। उसके न रहने से लोग कौड़ी को भी नहीं पूछते। जब तक धन पास रहता है, तभी तक मनुष्य का मान होता है, उसकी बातें सब मानते हैं। जहाँ धन नहीं है, वहाँ लोगों का रहना और न रहना बराबर ही है। आपने जो विचार किया है, वह बिलकुल ही ठीक है। आप बहुत थोड़े आदमियों को ले जाइए।

केवल घरवालों को, अपने दास-दासियों को एवं कुछ ब्राह्मणों को ले जाने का प्रबंध कर लीजिए, जिससे राजर्षि को कुछ कठिनाई न हो।"

इस प्रकार सलाह कर राजा ने विवाह की शुभ मुहूर्त निकलवाई। फिर अपने निज संबंधियों को तथा अच्छे पंडितों को नेवता भेज दिया। ज्यों ही अश्वपति की प्रजा को सावित्री के विवाह की बात मालूम हुई, त्यों ही वे लोग विना निमंत्रण ही झुंड-के-झुंड आने लगे।

आज राजा सावित्री को लेकर वन में विवाह करने को जा रहे थे। राजा के राज्य-भवन में सैकड़ों आदमियों की भीड़ लगी थी। कितने तरह के बाजे बज रहे थे। राजा ने जिन लोगों को नेवता दिया था, उनमें चाहे एक-दो रह गए, पर विना ही निमंत्र के लोगों की इतनी अधिक भीड़ लग गई कि राई डाले भूमि पर नहीं आती। सब लोगों का मुख प्रसन्नता से खिल रहा था। सभी नाच-गान में मस्त थे। सावित्री के जन्म ही के समय से जिन लोगों को उसका विवाह देखने की आशा लग रही थी, आज उनकी इच्छाएँ पूरी हो गईं। सब लोग सावित्री को अपनी कन्या से भी बढ़कर समझते थे। भला फिर वे लोग अपनी ऐसी कन्या के विवाह में शामिल न हों, तो और क्या करेंगे! सब लोग अपनी गाँठों में यथाशक्ति धन

बाँधे हुए थे। कोई-कोई तो अपने पास अमूल्य रत्न रखकर कन्यादान के समय देने का विचार कर रहे थे। जो लोग कुछ ग़रीब थे, वे अपनी हैसियत के अनुसार ही धन लिए थे। भाट आदि सोचते थे कि हम लोग अगर ऐसे समय में राजा से इनाम न लेंगे, तो फिर कब लेंगे। धनवान सोचते थे कि यदि हम ऐसे समय में अपना धन ख़र्च न करेंगे, तो फिर कब करेंगे। सब अपने मन में इस प्रकार सोचकर अपना-अपना सामान तैयार कर राजा के साथ जाने को तैयार हो गए।

कोई हाथी पर बैठे थे, कोई घोड़े दौड़ा रहे थे। पैदल आदमियों की गिनती करना तो एक बड़ा कठिन काम था। रथ के पहियों से धूल उड़कर आकाश में छा रही थी। जयकार के मारे सब दिशाएँ गूँज रही थीं। राजा के साथ जितने आदमी थे, उनमें कई एक तो पर्वतों की शोभा देखकर ही परम आनंदित हो रहे थे। कोई कहता था—"अहा! यह पर्वत कैसा मनोहर दिखाई देता है! यह नदी पर्वत से निकली है, कितनी सुंदर मालूम पड़ती है! इसका जल कैसा साफ़, कैसा निर्मल और कैसा पवित्र है! इसका जल कहीं पत्थरों से ठोकर खाकर फेन उगल रहा है, कहीं पर छोटी-छोटी भँवरें पैदा करता जाता है। सचमुच यह नदी एक चंचल बालिका के समान मालूम

पड़ती है। पर देखो, यही नदी कहीं-कहीं पर हरी-हरी दूब के सुंदर खेतों में जाकर गंभीर भाव धारण कर लेती है।" कोई कहता था—"यह नदियों का संगम कैसा सुहावना मालूम होता है! यह देखो, उसका पूरा साफ़ जल इस बड़ी नदी में मिल गया है। यह छोटी-सी नदी बड़ी नदी में मिलकर कितने खेतों को हरा-भरा करती है। अहा! यह नदियों का संगम कैसा शिक्षाप्रद है! ऐसा जान पड़ता है, मानो साफ़ स्वभाव-वाली बालिका अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिये अपने प्रियतम से जा मिली हो। कोई अपने गाने की धुन में मस्त था। तरह-तरह के बाजे बजाते गाते चले जा रहे थे। ऐसे आनंद में राह पूरी होते किसी को मालूम तक न पड़ा, और सब लोग तपस्वी द्युमत्सेन के वन में आ पहुँचे।

मुनि का आश्रम थोड़ी दूर रह जाने पर राजा ने सब लोगों को वहीं ठहरने की आज्ञा दी और स्वयं एक-दो आदमियों को साथ लेकर, पैदल ही, मुनि के आश्रम को गए। दूसरे लोगों ने राजा की आज्ञा मानकर वहीं पर डेरे डाल दिए। उधर भी नाच और गाना शुरू हो गया। किसी भी मनुष्य को किसी तरह का दुःख नहीं रहा। सब प्रेम में मस्त हो गए। सब लोगों की भीड़-भड़क्का से वह वन एक ही दिन में अच्छे ग्राम के समान बस गया।

कन्या सावित्री की सखियाँ और अनेक दास-दासियाँ तथा राज एवं प्रजा की स्त्रियाँ मंगल-गान कर रही थीं। उसे अकेली बिलकुल ही नहीं छोड़ती थीं। सावित्री भी मन में प्रसन्न थी। उसे अपने पति की एक वर्ष की उम्र जानकर भी मन में बिलकुल दुःख नहीं था। कारण यह था कि सावित्री को अपने कर्मों का अभिमान था। वह मन में सोचा करती थी कि यदि मैंने कोई पाप किया होगा, तो उसका फल मुझे मिलेगा; किंतु यदि मैं शुद्ध-चरित्र और अपने धर्म पर चलनेवाली होऊँगी, तो भगवान् भी मेरी लाज रखने का कुछ-न-कुछ उपाय ज़रूर सोचेंगे।

जब द्युमत्सेन को यह मालूम हुआ कि भद्रदेश के राजा अपनी एक-मात्र कन्या का विवाह मेरे पुत्र सत्यवान के साथ करने को आए हैं, तब उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। वह परमात्मा की विचित्र लीला को बार-बार सोचने लगे—"मेरा पुत्र यद्यपि राजकुमार है, तौभी वनवासी है। ऐसे दरिद्री सत्यवान को राजा होकर कौन अपनी प्यारी पुत्री को देता। तिस पर भी ऐसी सुलक्षणा और एकमात्र कन्या सावित्री का तो पूछना ही क्या है!" वह भगवान् की दया देख ईश्वर को बार-बार धन्यवाद देने लगे। उनके नेत्रों से आनंद के आँसू बह निकले।

मुनि के इस प्रकार प्रसन्न होने के और भी कई कारण थे। जिस समय यह राजा थे, उस समय से ही राजा अश्वपति के पराक्रम और प्रबल प्रताप को जानते थे। इन्होंने राजा से संबंध करने का विचार पहले ही किया था ; किंतु ईश्वरेच्छा प्रबल होने से आज तक वह कुछ न कर सके थे। आज अपनी दशा के विरुद्ध की उनकी आशा भी सफल हुई ! इसी से आज वह इतने अधिक प्रसन्न हो रहे थे। जिस समय सावित्र पहलेपहल आश्रम में आई थी, उसी समय मुनि ने न-जाने कितने विचार किए थे। दोनो ने अपनी कल्पना से कितना काम लिया था। सावित्री-जैसी रूपवती, गुणवती, शांत स्वभाववाली बहू को पाकर दोनो के मन में किस प्रकार आनंद हुआ होगा, यह सहृदय पाठक और पाठिकाएँ स्वतः ही समझ सकती हैं।

राजा अश्वपति ने द्युमत्सेन के सम्मुख अपना विचार प्रकट किया। किसी भी बात को एकदम स्वीकार न करना चाहिए, यही सोचकर मुनि ने राजा की बात को झटपट स्वीकृत नहीं किया। उन्होंने मन में सोचा कि यदि मैं एकदम 'हाँ' भर दूँगा, तो शायद राजा यह समझेंगे कि इस समय हम दरिद्री हैं, इससे जल्दी स्वीकार कर लिया है। सावित्री राजकुमारी है। उसने कभी दुःख का नाम तक नहीं सुना। बड़े यत्न से पाली-

पोसी गई है। वन में रहकर उसे कैसे सुख मिल सकता है ! जो विना कपड़ों के सिवा जमीन पर पैर तक नहीं रखती, वह अब वन में से फल-फूल बीनकर कैसे लावेगी ! जो आज तक कंचन के समान महलों में रहती थी, वह वन की कुटी में कैसे रह सकेगी । बरसात में जब सब जगह पानी-ही-पानी दिखाई देता है, कुटी में कभी-कभी पानी भर जाता है, उस समय बेचारी राजकुमारी को कैसे-कैसे कष्ट सहन करना पड़ेंगे । जो कई तरह के पदार्थों को, जो बड़ी ही मिहनत से तैयार किए हुए होते हैं, भली भाँति न खाती होगी, वही अब वन में फल-फूल खाकर कैसे दिन काटेगी ! जो नाना तरह के आभूषणों को पहनती थी, अब वल्कल के वस्त्र कैसे पहनेगी ! जिसे खिलाने को अनेक दास-दासियाँ हमेशा तैयार रहती थीं, राजकुमारी को किसी भी प्रकार का दुख न हो, इसका सदैव ध्यान रखती थीं, वही अब एक दरिद्र के घर में रहकर कैसे घर के काम कर सकेगी ! जो आज तक राजकन्या कहलाती थी, वही अब अंधे और दरिद्र मुनि की बहू कहलावेगी । ज्यों ही द्युमत्सेन के मन में ये विचार आए, त्यों ही वह बहुत दुःखी हो गए । वह सोचने लगे, देखो ईश्वर की लीला कैसी विचित्र है ! अपूर्व स्नेह और ममता ने मुनि को बहुत व्याकुल कर दिया ।

मुनि को अस्वीकार करते देखकर राजा ने कहा—"महाराज! आप क्यों व्यर्थ ही दुखी हो रहे हैं? हमारी कन्या राजकुमारी होने पर भी धर्मशील और अनेक कठिनाइयों को सहन करनेवाली है। वह बड़ी विनीता है। शायद आपको यह नहीं मालूम कि सावित्री को राजभवन की अपेक्षा वन में रहना बहुत पसंद है। छुटपन में जब वह हमारे साथ कभी-कभी वन को चली जाती थी, तब उसका मन फिर राजभवन में आने को होता ही नहीं था। उसने तो सत्यवान को खुद ही अपना पति बनाना पसंद किया है। मेरा आपसे बार-बार यही कहना है कि आप सब चिंता को दूर कर मेरी कन्या सावित्री को अपनी पुत्रवधू बना लीजिए। आपकी इसी कृपा से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।"

द्युमत्सेन ने कुछ संकोच-सहित कहा—"राजन! आप मेरी दशा तो देख ही रहे हैं। हम दोनो को आज अठारह वर्ष से नहीं दीखता। हमारी दरिद्रता भी आपसे किसी तरह छिपी नहीं है। फिर मैं सावित्री-जैसी सुशीला बालिका को पुत्रवधू बनाकर उसे क्यों कष्ट में डालूँ? मैं अपने मन में सिर्फ यही सोच रहा हूँ कि आप तो महाराज हैं और मैं एक वनवासी-मात्र! आप इतना जानकर भी कैसे संबंध कर सकेंगे। मैं तो आपको इस उपकार के बदले में किसी भी तरह बदला

दे ही नहीं सकूँगा। फिर मैं किस मुँह से यह कहूँ कि आप मेरे साथ बराबरी का संबंध कर लीजिए।"

द्युमत्सेन के इस तरह के विनीत वचन सुनकर राजा अश्वपति बोले—"महाराज! आप व्यर्थ ही क्यों इतने घबरा रहे हैं? आप अधिक संदेह करके मुझे अब लज्जित न करिए। धन और ऐश्वर्य सदा किसके पास रहता है। क्या पता है कि आज जो राजा है, वह कल फ़क़ीर न होगा। फ़क़ीर क्या राजा नहीं हो सकता? यह लक्ष्मी क्या किसी के साथ अचल होकर रही है? इसका तो यही स्वभाव ही है कि यह सदा यहाँ-वहाँ घूमा करती है। इसी से तो लोग इसे चंचला कहकर पुकारते हैं। फिर भला आपके धन की क्या पूछना है! इस समय तो आप वह धन कमा रहे हैं, जो सांसारिक धन तथा सुख सबसे श्रेष्ठ है। यहाँ पर आपने सब तरह के सुख भोग लिए और अब परलोक में सुख भोगने को इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। यह बात भी सत्य है कि अब सावित्री सिवा सत्यवान के और किसी दूसरे को अपना पति नहीं बना सकती। मेरी आपसे बार-बार यही प्रार्थना है कि आप उस कन्या के प्रण को पूरा कर उसके सतीत्व की रक्षा कीजिए। मुझे आपके पुत्र से योग्य और कौन मनुष्य इस संसार में मिल सकता है?"

राजा के इस प्रकार बार-बार कहने पर राजर्षि ने उनकी बात मान ली। मुनि के मन की बात समझते ही राजा के आनंद का ठिकाना न रहा। वह प्रेम-विह्वल हो उठे। उनसे जितना बन सका, उन्होंने राजर्षि का आदर और सम्मान किया। राजा का इस तरह विनीत एवं शिष्ट भाव देखकर द्युमत्सेन के मन की सब शंकाएँ दूर हो गई। राजर्षि को जिस बात का ध्यान कभी स्वप्न में भी नहीं आया था, आज उसे अपने सामने देखकर उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह उठे और उन्होंने अपने दोनो हाथों से प्रेम-पूर्वक राजा को अपने गले से लगा लिया। बस, अब क्या था ! उसी क्षण सत्यवान और सावित्री के विवाह की बात पक्की हो गई।

विवाह का समय आने पर सत्यवान को सुंदर वस्त्र पहिनाए गए। वह विवाह में अनेक मुनियों और अपने पिता के साथ वहाँ पर आ पहुँचा। राजा भी अपनी पुत्री को लेकर विवाह-मंडप में आए। विवाह-संस्कार होने के पहले सनातनधर्म के अनुसार वेदी बनाई गई। पश्चात् ईश्वर-प्रार्थना, उपासना आदि करके अग्नि का स्थापन किया गया। हवन पूर्ण हो जाने पर राजा ने अपनी लज्जावती सावित्री को सत्यवान के सामने बैठाकर, अग्नि को साक्षी करके, कहा—"सत्यवान, यही मेरी एक-मात्र पुत्री सावित्री है। अब यह तुम्हारी सह-

धर्मिणी हुई। तुम अपने हाथ से इसका हाथ पकड़ो। तुम्हारा कल्याण हो। परमात्मा करे, यह सच्ची पतिव्रता हो, तुम्हारी छाया की तरह सदा तुम्हारे ही साथ रहे।" इतना कहकर राजा ने वेद-मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल सत्यवान के हाथ पर छोड़ दिया। सत्यवान ने भी हर्ष-सहित सावित्री का पाणि-ग्रहण कर लिया। मंडप में बैठे हुए सब लोग आनंद मनाने लगे। चारो ओर से सब लोग फूलों की वर्षा करने लगे।

जब सावित्री सत्यवान के साथ जनवासे में पहुँची, अपने प्राणों से प्यारे पति का दर्शन कर अत्यंत प्रसन्न हुई। अपने स्वामी का चंद्रमुख देखते ही सावित्री का मुख-कुमुद खिल गया। प्यारे पति के दर्शन में सावित्री को ऐसा मालूम हुआ, मानो इसी समय वह नवयौवनावस्था में आए हैं। सत्यवान के शरीर से सुंदरता का रस-सा टपक रहा था। उसके प्रत्येक अंग बलवान् और स्वरूपवान् थे। कमल की पँखुरी के समान उनके नेत्रों को देखकर ऐसा मालूम होता था, मानो उनमें से कोई नवीन ज्योति निकल रही हो। अस्तु, सावित्री ने अपने देव-तुल्य पति के दर्शन करके उनके चरणकमलों में अपने को सादर समर्पित कर दिया।

सावित्री अवश्पति की एक-मात्र ही कन्या थी। उसका

विवाह एक वनवासी के पुत्र के साथ हुआ। राजा ने मन खोलकर असंख्य गाएँ, घोड़े, हाथी, मोती, मूँगा, हीरा, सोना, चाँदी आदि नाना प्रकार के अमूल्य और उत्तमोत्तम रेशमी वस्त्र बिदा में दिए। राजा के दिए हुए अमूल्य रत्न और आभूषणों से मुनि का आश्रम पट-सा गया। उस धन को देखकर सब मुनि चकित रह गए।

इस समय सत्यवान की माता का पूछना ही क्या था! उनके प्रसन्नता की सीमा ही नहीं थी। उनके कितने दिनों की आशा आज पूरी हुई। राजर्षि को इस सुख की घड़ी में सिर्फ़ एक बात का दुःख था। उसकी याद में उनका कलेजा फटा-सा जाता था। उनके दुःख का कारण नेत्र थे। बेचारे नेत्र-हीन होने के कारण अपनी पुत्र-वधू का मुख तक न देख सकते थे। बार-बार मन में यही सोचते थे—"हे ईश्वर! मेरी आँखें क्षण-भर को खोल दे, जिससे मैं अपनी प्यारी पुत्र-वधू का मुँह भी देख लूँ; फिर चाहे मुझे अंधा कर देना। मैं कैसा हतभाग्य हूँ कि ऐसी शुभ घड़ी में भी अपने संबंधियों को न देख सका। ईश्वर की इच्छा पर किस का वश चल सकता है।" वह लोगों के मुँह से ही अपनी बहू के रंग, रूप, स्वभाव आदि की बातें सुनकर अपने मन को संतोष देते थे। कभी-कभी तो वह इतने अधीर हो जाते थे कि दूसरों से सावित्री

के मुँह, नाक, आँख तथा खाने-पीने, चलने-फिरने आदि के संबंध में भी पूछ बैठते थे।

राजा जहाँ पर ठहरे थे, वहाँ की तो बात पूछना ही क्या थी। सब लोग राजा से विना ही पूछे अपने-अपने पास का धन ख़र्च कर आनंद मनाने और नाचने-गाने में मस्त हो रहे थे। उस समय उनके इन कामों से यही मालूम होता था, मानो वे सारे वन को हिलाए डालते हों। वन के रहनेवाले अनेक मुनि अपनी स्त्रियों तथा बालक-बालिकाओं के साथ इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। महाराज के अनेक उपाय करने पर भी यह भारी धूम गुप्त न रह सकी। मुनियों के वे बाल-बच्चे, जो फल-फूल ही खाकर रहते थे, आज रसगुल्ला, इमिर्ती, लड्डू और बालूशाई खा-खाकर अघा गए। कितने बालक तो अधिक खा लेने के कारण बीमार भी पड़ गए। वन के पशु-पक्षी भी लोगों के आनंद के साथ आनंद मनाने और वृक्षों की डालियों पर कूकने लगे। इस तरह सत्यवान और सावित्री का विवाह बड़ी धूम-धाम के साथ समाप्त हो गया।

विवाह हो जाने के दूसरे ही दिन राजा अपनी पुत्री सावित्री को मुनि के आश्रम में पहुँचाने की तैयारी करने लगे। उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली, गला भर आया। स्नेह से उनका हृदय उमड़ने लगा। सावित्री के नेत्रों से भी आँसू

निरंतर बह रहे थे। शोक के वेग को रोककर राजा ने अपनी पुत्री को समझाया और उसके आँसुओं को अपने हाथ से पोंछते हुए बोले—"बेटी, यह समय शोक करने का नहीं है। यह बात ठीक है कि अपने माता-पिता से बिछुड़ते समय हर एक को दुःख होता है; पर यह शुभ समय दुःख करने का नहीं है। मैं परमात्मा से बार-बार यही विनती करता हूँ कि वह तुम दोनो को हमेशा सुख दे।" कुछ काल ठहरकर राजा ने सावित्री से फिर कहा—"बेटी! अब तक तू रनवास में रहकर सब प्रकार के सुख भोगती थी; पर अब तुझे वन की कुटी में रहना पड़ेगा। देखना कोई यह न कहने पावे कि राजा की तो लड़की कहलाई, वह ऐसा काम कैसे कर सकती है! अपने अंधे सास-ससुर की टहल दासी के समान करना। किसी से भी ईर्ष्या न रखना। यदि कभी पति किसी कारण से नाराज़ भी हो जायँ, तो उनकी आज्ञा के बाहर न जाना। वन के दूसरे मुनियों और बच्चों को भी अपने ही समझना। उनके साथ इस तरह का कोई व्यवहार न करना, जिससे उन्हें किसी तरह का दुःख हो। जिस समय पति तुम्हारे पास आवें, उस समय उनका अच्छी तरह से आदर करना। कभी कड़े शब्दों में उन्हें उत्तर न देना। हमेशा अपने धर्म की रक्षा करते रहना। पति की सेवा में किसी भी प्रकार की कमी न रखना। इस

संसार में स्त्रियों के प्रत्यक्ष परमात्मा पति ही हैं। जिसका पति सब तरह से सुखी है, उस पर भगवान् के प्रसन्न होने में देर ही क्या लगती है ! हमेशा पति के पीछे सोना और पहले जागना।" इस प्रकार समझाकर राजा ने सम्मान-पूर्वक अपनी पुत्री को मुनि के आश्रम में भेज दिया। पश्चात् वह अपने नगर को लौट आए।

जिस तरह फूल के खिलने पर उसमें धीरे-धीरे सुगंधि आने लगती है, उसी तरह विवाह के बाद सावित्री के खिलते हुए हृदयरूपी पुष्प पर दिव्य सुगंध आने लगी। सावित्री को यह अपूर्व सुख देखने का पहला ही मौक़ा था। इससे पहले उसने कभी ऐसा सुख नहीं देखा था। यह घटना उसके लिये एक बिलकुल नई बात थी। इस भाव के छिपाने को यद्यपि सावित्री ने अनेक उपाय किए; पर सब निष्फल हुए। उसके मन में इस प्रकार का उत्साह था, जिसके कारण उसका वह भाव प्रकट ही हो गया। जब-जब उसके मन में सत्यवान का ध्यान आता, वह एकदम चौकन्नी होकर बैठ जाती थी। जब वह सत्यवान से धीमे-धीमे वार्तालाप करने लगती, तब कभी तो अपनी दृष्टि उनके चरणों पर रखती और कभी आनंदभरे नेत्रों से उनके मुँह की ओर ही देखने लगती थी। ज्यों-ज्यों दोनो को एक दूसरे के अनुपम चरित्रों का परिचय मिलता, त्यों-त्यों उनका प्रेम सौगुना बढ़ता जाता था।

राजा अश्वपति ने राजर्षि को दहेज में बहुत-सा धन दिया था। किंतु सावित्री अब अपने मन में विचार करने लगी—"जब तक मेरा विवाह नहीं हुआ था, तब तक मैं राजकन्या थी और राजकन्या-सी रहती थी। अब तो मैं वनवासिनी हूँ। जब मेरे प्राणों से प्यारे पति वल्कल के वस्त्र पहने हैं, वेदी की लकड़ियाँ लाने के लिये जंगल-जंगल फिरते हैं, पेड़ों में से फल-फूल तोड़कर लाते और मुझे तथा मेरे सास-ससुर को खिलाते हैं, तब मैं अनेक आभूषण पहनकर कौन शोभा पा सकती हूँ! वन में रहकर यदि राजभवन के गहने और कपड़े पहने, तो क्या किया!"

अपने मन में इस तरह सोचकर सावित्री ने अपने सब कपड़े और गहने उतारकर रख दिए और सास-ससुर तथा पति के समान वल्कल के कपड़े पहन लिए। इन कपड़ों को पहने हुए भी साबित्री वनदेवी के समान दिखाई देती थी। सुंदर वस्त्र और अमूल्य आभूषणों से उसे वल्कल और भी अधिक पसंद पड़े। उसकी सुंदरता और भी बढ़ गई।

सत्यवान के स्वभाव का तो पूछना ही क्या था! उसमें परोपकार की मात्रा तो कूट-कूटकर भरी हुई थी। छुटपन ही से वह परोपकार में ही अपना जीवन लगा चुका था। जब छोटे-छोटे मुनि-बालक फल-फूल और लड़कियाँ नहीं पाते थे,

तब यह बड़े यत्न से उनको फल-फूल तोड़कर दे देता था। दूसरों को सुखी देखकर ही वह सुखी होता था। किसी को दुःखी देखकर आप ही उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे। वह वन में रहनेवाले संतों को और मुनि-पुत्रों को स्नेह की दृष्टि से देखता था।

विवाह के बाद सत्यवान ने परोपकार की मात्रा और भी बढ़ा दी थी। लोक-हितकारी कामों के करने में उसे बहुत सुख मिलता था। सत्यवान अपने माता, पिता, गुरु तथा वनवासी मुनियों के पक्का भक्त था। उनकी सेवा-टहल में वह किसी भी प्रकार की कमी नहीं करता था। सत्यवान के पिता के आश्रम में आनेवाला कोई भी अतिथि विमुख होकर नहीं जाता था। वह सावित्री को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं देता था। जब यह अपनी कुटी में आता, तब सावित्री को अनेक प्रकार के उपदेश देता रहता था।

अपनी एकमात्र पुत्रवधू को वल्कल पहने सुन सास-ससुर की आँखों से आँसू बहने लगे। वे लोग सोचने लगे—"हा! आज हम लोगों के कारण ऐसी सुख से पाली हुई कन्या की यह दशा हो रही है। इसने हम लोगों को मुनि-वेश में देखकर ही अपने सब गहने उतारकर रख दिए हैं।" अपने मन में इस प्रकार विचारकर सावित्री की सास ने सावित्री को अपने

पास बैठा लिया और उसके सिर पर हाथ फेरकर बड़े दुःख से कहा—"बेटी! तुम तो राजकन्या हो। वनवासिनी थोड़े हो जो तुमने इस प्रकार दीनता का रूप धारण किया है। तुम्हारे पिता के घर क्या कमी है? तुम उनकी एक-मात्र कन्या हो। तुम जो चाहो सो उनसे कहकर करा सकती हो। मैं तुमको इस भेष में न रहने दूँगी। जिस समय तुम हमारे यहाँ अतिथि होकर आई थीं, उस समय इसी जगह पर तुम्हारे साथ अनेक सहेलियाँ थीं। सभी को इस बात की चिंता रहती थी कि राजकुमारी को किसी प्रकार की तकलीफ़ न हो। पर आज तुमने एक वनवासिनी का रूप बना लिया है। मेरी प्यारी बहू! हम लोगों को इस प्रकार रहते बहुत दिन हो गए हैं। इस कारण अब हमें कोई तकलीफ़ नहीं मालूम होती। तुम तो अभी पूरे सुखों में रही हो। फिर इतना कष्ट क्यों सहती हो? अपने कपड़े पहनकर राजबहू के ही समान रहो। देखो, तुम्हारा शरीर कमल से भी कोमल है, तुमने अभी तक दुःख का नाम तक नहीं सुना है, अब एकाएक क्यों अपने शरीर को इतना कष्ट देने लगीं?"

अपनी सास का उपदेश सुनकर सावित्री कुछ न बोली। वह अपनी गर्दन नीचे किए खड़ी रही। वह अपने मन में सोचने लगी—"जब मेरे सास और ससुर, दोनो

वनवासी हैं, मैं जिनकी छाया हूँ, दुखसुख की साथिनी हूँ, जीवन-भर के लिये जिनके चरणों की दासी हूँ, जब वही खुद अपने सिर पर जटा रखाए हैं, वन-वन में लकड़ियाँ काटते और फलफूल बीनते फिरते हैं, तब मैं इन आभूषणों को पहनकर क्या करूँगी। इस संसार में पति ही, सब तरह से, स्त्री का धन तथा आभूषण है। जो स्त्रियाँ अपने पति से विमुख हैं, उन्हें यहाँ पर सिवा अंधकार के और क्या दिखाई देता है। इन दिखाऊ आभूषणों के बदले परमात्मा ने मुझे जो एक-मात्र आभूषण दिया है, उसी से मेरी शोभा और बड़ाई है। मेरे इस अलंकार के सामने संसार के सब अलंकार तुच्छ हैं। जो स्त्री आभूषणों और धन के लोभ में आकर अपने प्राणों से प्यारे को कष्ट देती हैं, वे उसकी सुखदायिनी न होकर पूरी दुखदायिनी हैं। उनका मंगल कभी नहीं हो सकता।" इस प्रकार सोचकर सावित्री ने सास को कुछ भी उत्तर न दिया।

बहनो ! सावित्री के ये विचार रत्ती-रत्ती सत्य हैं। मैं भी यही कहूँगा कि इस संसार में स्त्री का जो कहो, सब कुछ पति ही है। जिस स्त्री ने यह धन, यह भूषण यत्न के साथ अपने जन्म-भर सामने रक्खा है, वही वास्तव में सच्ची सुंदरी एवं सच्ची सती है। उसी का स्त्री-तन पाना सफल है।

किंतु जिस स्त्री ने इस धन, इस आभूषण, इस संपत्ति का मूल्य नहीं समझा. वह मनुष्य होकर भी पशु के समान है—पशु ही नहीं, बल्कि पशु होने पर भी अंधी है। मैं तो यही कहूँगा कि यदि कोई स्त्री अपने पति की सेवा न करके गहनों और वस्त्रों की सेवा करती है, तो वह मानो हीरे की कनी को फेककर काँच के टुकड़े बटोर रही है।

सच्ची सती सावित्री का इस तरह अनुराग देखकर वन के सब मुनि वैसे ही रह गए। वे उसकी मुक्त कंठ से बार-बार प्रशंसा करने लगे। सास और ससुर भी अपनी प्यारी बहू का इस तरह आचरण देखकर हमेशा अपने भाग्य को सराहते रहते थे। किंतु जब उनको सावित्री के दुःख की याद आती थी, तब उनका गला भर आता था। आँखों से आप-से-आप आँसू बहने लगते थे। सोचते थे कि यदि आज हम राजा होते, तो ऐसी सुलक्षणा बहू को कितना आराम देते !

वनवासी सास-ससुर के घर आकर सावित्री ने केवल आभूषण ही नहीं उतारे, बरन् वह तो सब प्रकार से वन-वासिनी बन गई। वह अपने माता-पिता के दिए हुए वस्त्रों पर न सोकर अपने सास-ससुर की तरह कुशा या और भी कोई घास जो उसको मिलती थी, बिछाकर सो जाती थी। दिन निकलने के पहले ही जागकर घर को साफ़-

सुथरा कर देती, जहाँ की चीजें, वहीं रख देती। अपने सास-ससुर के पूजन का सामान तैयार कर देती थी, जिससे उन्हें किसी तरह की कठिनाई न हो। माता-पिता से अलग होने पर दूसरी कन्याओं की नाईं सावित्री को भी दुःख हुआ था; किंतु उसने अपने मन में सोचा कि यदि मैं अपने माता-पिता के बिछुड़ने का दुःख करती बैठी रहूँगी, तो घर का काम कौन करेगा। इस प्रकार अपने मन में सोचकर उसने कभी भी काम में ढील नहीं डाली। उसके प्रसन्न-मुख रहने और सब काम यथारीति से करने पर किसी को यह भी मालूम न होता था कि सावित्री को अपने माता-पिता से बिछुड़ने का कुछ दुःख है।

अपनी प्राणों से प्यारी बहू को सब तरह से कामों में लगी देखकर सावित्री की सास और ससुर मन में सदा विचार करते रहते थे—"यह कैसी सुलक्षणा बहू है! उसे किसी काम के करने को कहना ही नहीं पड़ता; खुद ही सब काम सोच-विचार कर कर लेती है। बड़े घरों की बहुत लड़कियाँ, जब किसी कारण से किसी ग़रीब के यहाँ ब्याही जाती हैं, तब अपना समय पिता के ही घर पर बिता देती हैं। यदि वे ससुरे को जायँ, तो वहाँ उन्हें अनेक काम-धंधा करने पड़ेंगे। इस बात से वे अपना जी इतना चुराती हैं कि माता-पिता के समझाने पर भी उन्हें अनेक तरह से झूठे और कुछ सच्चे

मसाले मिलाकर अपने कष्टों का हाल सुनाती हैं; कहती हैं— 'उसके यहाँ क्या रक्खा है? तुमने ऐसी आँखें बंद कर मुझे अंधे कुएँ में पटक दिया, कुछ भी विचार न किया। अब तो चाहे मैं मर जाऊँ, पर कभी ससुराल को न जाऊँगी।' माता की आत्मा बड़ी ही कठिन होती है। वह बेचारी अपनी बेटी के कष्ट कहाँ सह सकती है! वह उसी समय पति से कह देती है कि मेरी लड़की को वहाँ बहुत दुःख होते हैं, इस कारण अब मैं उसे ससुरे नहीं भेज सकती। यहाँ उसे जो सुख और दुःख होंगे, उन्हें मैं अपनी आँखों से देखती तो रहूँगी। पति भी उन बातो में आकर अपनी लड़की को घर ही रख लेते हैं। जो माता-पिता अपनी ममता के कारण अपनी लड़की को जबर्दस्ती अपने घर रखते हैं, उनको मेरी बहू सावित्री से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। ससुरे में स्त्री को पति-सेवा, सास-ससुर की सेवा और अपने रहने की जगह ठीक और साफ़-सुथरा रखना आदि जो भी कर्तव्य हैं, उन्हें हमारी बहू समुचित रीति से पालती है।"

सावित्री के माता-पिता के घर कितने तरह के सुख थे। वे कितने धन के मालिक थे। उनके यहाँ कितने नौकर चाकर भी थे। किंतु उसने अपने को राजकन्या न समझा, और वह जिस दिन अपने ससुरे में आई, उसी दिन से अपना

सब काम बड़े उत्साह से करने लगी। सावित्री यदि अपने पिता के घर रहकर अपना जन्म भी बिता देती, तो राजा को वह किसी तरह भारी न थी। कहते हैं, 'भैंस के सींग भैंस को भारी नहीं होते'। पर नहीं, उसने अपने पिता के घर रहने का कभी मन में विचार तक नहीं किया। वह विवाह के बाद से एक दिन के लिये भी मायके नहीं गई। वह जब से अपने ससुरे में आई, तभी से पति के घर को ही अपना घर समझने लगी। यद्यपि सावित्री के सास-ससुर कंगाल थे, उसे सब काम अपने हाथों से करना पड़ता था, तो भी वह अपने सुख की बिलकुल ही परवाह न कर अपने सास-ससुर की सेवा में जीवन बिता रही थी। वह हमेशा अपने सास-ससुर की सेवा-शुश्रूषा में अपने जीवन का लाभ समझती थी। देव-पूजन की सब सामग्री यथाविधि रखती, अपने पति का आदर एवं उनके मनोरंजन का ध्यान हमेशा रखती थी। जब पति जंगल से लकड़ियाँ काटकर या फल-फूल बीनकर आते थे, तब सावित्री पानी लेकर उनके पास दौड़ जाती और चरणों को धो चरणामृत लेकर उनके पैर दाबने लगती थी। सत्यवान भी अपनी पत्नी के कामों को देखकर कभी दुखी नहीं होते। जब कभी उनको समय मिलता, वह गपशप न उड़ाकर सावित्री को उपदेश ही देते रहते थे।

सत्यवान के उपदेशों में सास-ससुर की सेवा और अतिथि-स्वागत की बातें अधिक रहती थीं। वह सदैव सावित्री को यही शिक्षा देते रहते थे—"प्रिये ! चाहे तुम्हें और मुझे कई तरह के दुःख भोगने पड़ें, पर माता-पिता को किसी तरह की तकलीफ़ न होने पावे। माता पिता कितने कष्ट से अपने बच्चों को पालते हैं, अपने दुःख-सुख की कुछ भी चिंता न कर अपने बच्चे को सुख देने की चिंता में रहते हैं। उनके ऐसा करने का उद्देश्य क्या है ? सिर्फ़ यही कि हमारे पुत्र जब बड़े हो जायँगे, तब हमें सुख देंगे ; जिस समय हमारे हाथ-पैर न चलेंगे, उस समय हमको एक लोटा पानी देंगे।" सावित्री तो ख़ुद ही समझदार थी; सदा सास-ससुर के सुख की चिंता रखती थी। पर पति के उपदेशों को भी बड़े धैर्य के साथ सुनकर उनके पालन में किसी भी बात की कमी न करती थी।

सावित्री बड़े तड़के उठकर भगवान् को स्मरण करती, अपने पति को प्रणाम कर बाहर निकलती और सास-ससुर के चरणों में माथा नवाती थी। फिर वह अपने घर का सब काम-काज करके वन में रहनेवाली सखी-सहेलियों के साथ जंगल को चली जाती थी। वहाँ से पूजन के फल-फूल और दूब ले आती और सास-ससुर की पूजन की तैयारी कर देती थी। जब द्युमत्सेन पूजन कर चुकते, तब वह भोजन बनाती थी। सबको भोजन करा

चुकने के बाद आप भोजन करती थी। यदि किसी कारण से सत्यवान कुछ देर से आते, तो उसका मन बहुत विकल होने लगता था। बिना पति को भोजन कराए वह पानी तक नहीं पीती थी। सत्यवान के आते ही उनके सिर पर से फल-मूल का गट्ठा उतारकर उनके पैर दाबने लगती थी। जब सत्यवान को स्नान कराकर भोजन करा देती, तब आप भोजन करती थी।

दोपहर के पहले जब सावित्री के सास-ससुर भजन करने लगते और अपनी प्यारी बहू के हाथों के बनाए हुए गजरों को इष्टदेव पर चढ़ाकर ध्यान-मग्न हो जाते थे, तब सावित्री कुटी के पीछे जाती और वहाँ वृक्षों की शीतल छाया में बैठकर, एकाग्र चित्त से, पति की मंगल-कामना के लिये हमेशा ईश्वर से विनय करती रहती थी। फिर सास-ससुर की पूजा हो जाने के पूर्व ही अपनी कुटी में आकर अपना काम करने लगती थी। अपने पति की आयु की बात वह सदा अपने मन में रखती थी। उसे किसी ने जान तक नहीं पाया था।

सावित्री जब कभी प्रातःकाल या सायंकाल अपने पति के साथ वन में थोड़ी दूर तक यहाँ-वहाँ जाती थी, तब विचरते हुए हिरन के बच्चे उसके मुँह की ओर देखकर खड़े-के-खड़े रह जाते थे। वे कभी-कभी एकटक होकर उसकी तरफ़ देखते

रहते और कभी हरी-हरी दूब खाने लगते थे। वे बच्चे सावित्री से इतने परिचित हो गए थे कि पालतू बच्चों की नाईं उसके पीछे चले जाते थे। सावित्री किसी पेड़ के नीचे बैठती, तो नाना तरह के पक्षियों की बोली सुनकर ख़ुश हो जाती थी। जिस समय सावित्री अपने हाथों से फूलों की माला बनाकर अपने पति के गले में पहनाती थी, उस समय सत्यवान के आनंद का ठिकाना नहीं रहता था। इस तरह सावित्री अपने दिन जंगलों में ही बड़े सुख से बिता रही थी, मानो वह किसी वनवासिनी को पुत्री हो। उसे अपने पिता के घर का सुख, पति के दर्शन करते ही, बिलकुल भूल-सा गया था।

संध्या के समय जब वन के सब ऋषि-पुत्र सत्यवान के आश्रम में आकर वेद-गान करते थे, उस समय सावित्री अपनी कुटी के पास एक पेड़ की ओट लेकर बैठ जाती और ध्यान से सब सुनती थी। वहाँ से जब वह सत्यवान के मुँह की ओर देखती, तो अपने को भूल-सी जाती थी। अपने मन में सोचती थी कि एक वह भी समय था, जब मैंने इसी स्थान पर यह पवित्र मुख-मंडल देखा था और उसे देखते ही तन-मन की सुधि खो चुकी थी। सावित्री सत्यवान की ओर बराबर टकटकी लगाए देखती रहती थी, तौभी उसका मन कभी तृप्त नहीं होता था। अपने पति के मुख की ओर देखने में उसे कितना सुख

मिलता था, यह वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने कभी इसका अनुभव किया होगा।

सावित्री सत्यवान के मुँह की ओर इस प्रकार क्यों देखती और दिन-प्रति-दिन उसकी ओर इस प्रकार क्यों आकर्षित होती जाती थी, इसका कारण स्पष्ट है। सावित्री ने जब से नारदजी के मुँह की वह भविष्य-वाणी सुनी थी, उसी समय से वह दिन, माह, घड़ी, घंटा और मिनट तक गिनती जाती थी। ज्यों-ज्यों नारदजी के बताए हुए दिन का मुहूर्त निकट आता जाता था, त्यों-त्यों सावित्री मन-ही-मन बहुत दुखी होती जाती थी। उसका शरीर सूखकर काँटे के समान होता जाता था। उसका भोजन धीरे-धीरे कम होता जाता था। यह बात सावित्री ने अपने सास-ससुर तथा पति से भी छिपा रक्खी थी। वह सोचती थी कि यदि मैं यह अपने सास-ससुर को सुना दूँगी, तो उनके दुःख का ठिकाना न रहेगा। वास्तव में उन दोनो अंधों को सत्यवान ही लाठी के समान थे।

ऐसा सब गुणों से पूर्ण पति, माता-पिता से भी अधिक प्यार करनेवाले सास-ससुर, ऐसा शांतिमय घर कि जिसके तुलना के बराबर सावित्री को इस-संसार भर में कोई स्थान सुखमयी नहीं दीखता था, होने पर भी एक वर्ष के बाद, सावित्री का मन बहुत खिन्न रहने लगा। सावित्री के मन पर

इन सुखों का उलटा ही प्रभाव पड़ने लगा। उसे सारा वन श्मशान के समान दिखाई देने लगा। वह सब काम ठीक रीति से करती जाती थी, थोड़ा बहुत जो कुछ खाया जाता, खाती-पीती थी; किंतु चित्त में कभी शांति नहीं रहती थी। नारदजी की कही हुई बात सावित्री की आँखों के सामने हमेशा झलकती रहती थी। यद्यपि नारदजी को कहे एक वर्ष पूरा होने को आ गया था, किंतु सावित्री को वह बात रोज़-रोज़ नई-सी जान पड़ती थी।

दिन-भर सावित्री घर के काम-काज में लगी रहती थी। उसे अपने घर के काम तथा सास-ससुर की सेवा में यों ही दिन बीत जाता था। यदि कुछ समय मिलता, तो वह रात ही का था। इस समय सारा संसार शांति पाने को सोता है। पर सावित्री को नींद कहाँ ? उस दुखिया को तो यही दीखता था कि वह कौन-सी सोने की घड़ी होगी, जब मैं अपने पति को उस विकट दुःख से छुड़ा सकूँगी। वह हमेशा ईश्वर से यही विनती करती रहती थी—"हे परमात्मन्, हे दीनबंधो! मुझे इस कठिन दुख से बचाइए। मैं आपसे यही एक-मात्र भिक्षा माँगती हूँ। आप सब तरह समर्थ हैं। आप एक ही घड़ी में राई से पत्थर और पत्थर से पहाड़, पहाड़ से राई कर सकते हैं। यदि आपकी कृपा हो जावे, तो एक चींटी विशाल-से-

विशाल समुद्र को लाँघ सकती है। आप सब कुछ कर सकते हैं। मैं भी आपकी पुत्री हूँ। यदि आप मेरे पति के जीवन की रक्षा कर दें, तो क्या कठिन कार्य है! चाहे इस काम के बदले आप मुझसे सर्वस्व ले लें; किंतु एक उनको रक्षा कर दें। स्वामी के न रहने पर मैं किस तरह जीवित रह सकती हूँ। जिस समय एक वह नहीं हैं, उस समय मेरे लिये यह सारा संसार सुख के बदले पूरा दुखदायी है। मेरे सास-ससुर भी अपने सामने प्यारे पुत्र का मरा हुआ शरीर देखकर कैसे जीवित रह सकते हैं? यदि एक जीव के बदले आप तीन जीव लेना चाहें, तो ले लीजिए; पर पति को अवश्य बचा दीजिए। यदि आप उनको न बचा सकेंगे, तो मेरा सारा घर चौपट हो जायगा। हे प्रभो, हे जगत्पिता! मुझे इस कठिन दुःख से बचाइए।"

सावित्री इस प्रकार भगवान् से प्रार्थना करती-करती सारी रात बिता देती थी। रोते-रोते उसके सारे वल्कल के वस्त्र-आँसुओं से तर-बतर हो जाते थे। वह रोती थी, पर प्रकट नहीं। उसे डर लगा रहता था कि मेरे इस प्रकार रोने से कहीं पति की नींद में बाधा न पड़ जाय। यदि उन्हें मेरा रोना मालूम हो जायगा, तो वह मुझसे विना पूछे न रहेंगे, और यदि मैं उन्हें यह बात बता दूँगी, तो उनके दुःख का ठिकाना न रहेगा। किंतु ऊँट की चोरी विना खड़े हुए नहीं

हो सकती। आँसुओं की धारा के एक-दो बूँद सत्यवान के शरीर पर गिर पड़ते थे। वह इस रहस्य को बिलकुल ही नहीं ताड़ पाता। जब तक मनुष्य को कोई बात न मालूम हो, तब तक वह दूसरे के सुख और दुःख को क्या जान सकता है। जब कभी सत्यवान सावित्री से उसके दुबले होने का कारण पूछता, तब सावित्री उसे यह बात बिलकुल ही मालूम नहीं होने देती थी। सत्यवान के कहने पर सावित्री यही उत्तर देती थी—"नाथ! जैसा मुझे सुख यहाँ रहने में है, परमात्मा हर एक महिला को दे। मुझे यह वन राजभवन से भी सुखदायी मालूम होता है।"

सबेरा होते ही वह फिर अपने घर के काम में लग जाती थी। उसके हाव-भाव देखकर किसी को भी यह बात नहीं मालूम होती कि सावित्री को किसी प्रकार का दुःख है। वह घर का काम पहले से और भी अच्छा करती जाती थी। सास-ससुर अपनी बहू को काम में लगे देखकर प्रसन्न होते और सदा बड़ाई करते रहते थे। उसके मन में जो चिंता लगी थी, उसे दूसरे से कहने से कोई बटा तो सकता ही नहीं; फिर भला साध्वी-सावित्री व्यर्थ ही अपने मन की चिंता प्रकट कर क्यों सबको दुःख में डाले!

जब कभी सावित्री का मन बहुत ही अधीर हो जाता,

उसे बिलकुल कल नहीं पड़ती, मन में शंका हो जाता कि कहीं मेरा यह भाव किसी को मालूम न हो जाय, तब वह अपने अड़ोस-पड़ोस की मुनि-स्त्रियों को बुला लेत और तरह-तरह की कथाएँ सुनती थी। दुःख में जब आदमी बहुत ही विकल होता जाता है, तब उसे सिवा धर्म-कथाएँ सुनने और भगवान् का भजन करने के कोई शांति देनेवाला उपाय ही नहीं रहता। अपने मन में इस प्रकार विचारकर सावित्री बड़े चाव से धर्म-कथाएँ सुनती थी। उन्हें सुनकर उसका मन कुछ क्षण के लिये खुश हो जाता था। उसकी आँखों का जल सूख जाता था।

पाँचवाँ अध्याय

पाठको ! अभी तक आप लोगों ने एक मामूली राजकन्या का वृत्तांत पढ़ा था। अभी आपको कर्म की प्रधानता नहीं मालूम हुई; पर अब यह वह अध्याय है, जिसके पढ़ने से आपको एक नवीन ही तेज दिखाई देगा। यह सावित्री की जीवन-घटना का सबसे मुख्य अंग है। इस अध्याय में जो घटना लिखी है, उसी के कारण सावित्री का नाम महिलाओं को प्रातःस्मरणीय हो रहा है। इस घटना के समान संसार में कोई घटना अब तक नहीं हुई। इस घटना के द्वारा सावित्री के असीम पराक्रम की बात आप लोगों को विदित हो जायगी।

आज सावित्री का विवाह हुए एक वर्ष पूरे होने को कुछ ही दिन बाक़ी थे। ज्यों-ज्यों वर्ष पूरे होने के दिन घटते जाते थे, त्यों-त्यों सावित्री की चिंता और भी बढ़ती जाती थी। क्यों न हो, यही बात सावित्री के जीवन में मुख्य थी। जहाँ पति नहीं, वहाँ स्त्री को संसार में सिवा अंधकार के और कुछ दिखाई नहीं देता। स्त्रियों का तो धर्म यही है कि चाहे जिस दशा में हो, वह उसका मान सदैव करती रहे। जो स्त्री संपत्ति में तो पति का आदर करती है; पर विपत्ति में नहीं,

उसकी इस लोक में क्या, परलोक में भी निंदा होती है। पतिव्रता स्त्रियों के लिये सब सुख और परम धर्म पति-सेवा ही है। चाहे पति कैसा भी क्यों न हो; पर वह उनके लिये देव-तुल्य ही है। जो स्त्रियाँ सती हैं; वे कभी वस्त्रों में मन नहीं लगातीं, आभूषणों में आशक्त नहीं होतीं। उनका मन सदैव पति-सेवा ही में लगा रहता है। वह हमेशा पति की आज्ञा पालने ही में उत्सुक रहती हैं। पति की सेवा से अधिक स्त्री का दूसरा उत्तम भूषण ही नहीं है। जो स्त्री अपने कुल की मान-मर्यादा बढ़ाना चाहती है, वह सदा स्वधर्म-पालन में उद्यत रहती है। पति की आराधना ही सती स्त्री का एक-मात्र प्रधान कर्तव्य है। वह कभी भूलकर भी पति का अनादर नहीं करती।

स्त्री को स्वर्ग में भी पति का वियोग नरक के समान दुखदायी हो जाता है।। माता-पिता, भाई, पुत्र ये अपने कर्मों के अनुसार फल पाते हैं; किंतु स्त्री पति के भाग्य का लिखा ही भोगती है। इस प्रकार की बातें सोचकर सावित्री के मन की चिंता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती थी। अब उसके मन की चिंता के भाव छिपाए नहीं छिपते थे। अपनी शांत-चित्त तथा प्राणों से प्यारी बहू को इस प्रकार चिंतायुक्त देखकर सास-ससुर उससे इस चिंता का कारण पूछते थे; किंतु सावित्री

मन में सोचती थी कि यदि मैं इनको अपने इस दुःख का कारण बता दूँगी, तो उन्हें व्यर्थ ही वेदना होगी। इससे बढ़कर और क्या दुःख की बात हो सकती है ! यही सोचकर वह बिलकुल ही कुछ नहीं कहती थी; अपने मन की चिंता अपने मन में ही रखती थी।

सावित्री को इस प्रकार दिन-पर-दिन दुबली और चिंता में लगी देखकर सत्यवान ने एक दिन उससे कहा—"प्यारी ! तुम दिन-पर-दिन दुबली-पतली क्यों होती जाती हो ? मैं जब देखता हूँ, तभी तुम प्रसन्न-चित्त नहीं दिखाई देतीं। क्या तुमको अपने माता-पिता से मिलने की चिंता दिन-रात लगी रहती है ? किंवा अपनी सखियों का प्रेम तुम्हें दुःखित करता रहता है ? या तुम राजकन्या हो, पिता के घर तुमने अपने हाथ से भरकर एक लोटा पानी भी न पिया होगा; पर जब से तुम यहाँ आई हो, बराबर कष्ट ही भोगने पड़ते हैं। क्या तुम्हारे दुःख का यह कारण है अथवा और अन्य कोई कारण ? यदि तुमको यहाँ अधिक कष्ट होता हो, तो तुम कुल काम छोड़ दो। तुम्हारा चेहरा देखकर मुझे हमेशा चिंता रहती है, सदैव डर लगा रहता है। जो बात हो, वह साफ़-साफ़ जल्दी कहो, मेरा मन बहुत अकुला रहा है।"

सत्यवान की प्रेमभरी बातें सुनकर सावित्री की आँखों

से आँसू बहने लगे। उसका गला भर आया। वह अपने मन में विचार करने लगी—"देखो हमारे प्राणों से प्यारे को यहबात विदित नहीं है कि मेरीदे चिंता का क्या कारण है। मैं तो यही मुँह देखकर जीती हूँ। मैं तो दुबली-पतली हो ही रही हूँ; फिर भी उसी दशा पर आ जाऊँगी। पर तुम तो मुझे सर्वथा त्याग कर चले ही जाओगे।" इस प्रकार मन में सोच-कर सावित्री ने अपना मुँह कुछ पीछे की ओर फेर लिया और अपने आँसू पोंछने लगी।

सावित्री की यह दशा देखकर सत्यवान से भी न रहा गया। वह भी अधीर हो उठा। उसने अपने हाथों से अपनी प्यारी के आँसू पोंछे और कहा—"प्रिये! जो बात हो, वह साफ़-साफ़ कह दो। तुम्हारे इस प्रकार चिंता करने का क्या कारण है? यदि मेरे योग्य कोई काम हो, तो बताओ। मैं उसे जी-जान से करने को तैयार हूँ।"

सत्यवान के वचन सुनकर सावित्री ने कहा—"नाथ! क्या आपने मुझे नीच समझ रक्खा है, जो ऐसी बातें कहते हो। आपकी बातें सुनकर तो मुझे हँसी आती है। आपके साथ रहने में मुझे सच्चा सुख मिलता है। मैं तीनों लोकों का भी सुख नहीं चाहती; चाहती हूँ केवल तुम्हारा सह-वास। आपको छोड़कर मुझे पिता के यहाँ तो ठीक भी है,

स्वर्ग में भी सुख नहीं मिल सकता। मुझे इस हरे-भरे वन में पिता के यहाँ से बढ़कर सुख है। इस वन में मुझे आपके साथ रहने में सिंह-जैसे भयंकर जंगली जानवरों का भी डर नहीं है। मैं तो ईश्वर से बार-बार यही विनय करती हूँ कि वह मुझे इसी प्रकार आपकी सेवा में लगाए रहे। आप वन में विचरें, तो मैं आपके आगे-आगे तिनका तथा काँटे दूर करती चलूँ। इसी में मुझे परम आनंद है। भला आप ही बताइए, मुझे यहाँ किस प्रकार का कष्ट है। मुझे यह बात भी भली भाँति विदित है कि आप मुझे अकेली के सिवा सैकड़ों जीव-धारियों का पालन-पोषण कर सकते हैं। फिर मैं चिंता करूँ, तो किस बात की ?"

अपनी प्यारी की इस प्रकार बातें सुनकर सत्यवान ने कहा— "प्रिये ! वन में एक नहीं सैकड़ों कष्ट होते हैं ! तुम राजकुमारी हो, तुम्हारे लिये इतने कष्ट सहन करन बहुत कठिन काम है। देखो, यहाँ गुफाओं में रहनेवाले सिंह दिन-रात गरजते रहते हैं। कई भयंकर जीव खुले मैदान में जहाँ-तहाँ फिरते रहते हैं। यहाँ प्यास लगने पर कभी-कभी पानी भी नहीं मिलता। दिन-रात काम करना पड़ता है। वृक्षों के नीचे पत्तों के बिछौने पर सोना पड़ता है। भूख लगने पर पेड़ों से गिरे हुए फलों का भोजन करना पड़ता है। नदियों और झरनों का पानी पीती

हो, जिसे तुमने कभी पिया तक न होगा। तुम प्रति दिन मेरे ही कारण तीन काल स्नान करती हो, हवन के लिये लकड़ियाँ इकट्ठी करती हो। मैं कहाँ तक वन के दुःखों का वर्णन करूँ ? यहाँ दुःख-ही-दुःख दिखाई देते हैं। शायद इस कारण से तुम्हारा मन दुःखी होता हो, तो तुम मुझसे साफ़-साफ़ कह दो। मुझसे जितना बन सकेगा, यथाशक्ति तुम्हारे दुःख को दूर करने का उपाय करूँगा।"

सत्यवान के वचनों को सुनकर फिर सावित्री की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगो। वह बड़ी दुखित होकर बोली—"नाथ! आपने वन में रहने के जो कष्ट बतलाए हैं, वे मुझे आपके साथ रहने में सुखदायी हो रहे हैं। यहाँ पर ईश्वर की विचित्र-विचित्र लीला देखने को मैं आपके साथ कभी-कभी वन में चली जाती हूँ, और वहाँ का दृश्य देखकर मुझे जो प्रसन्नता होती है, वह आपसे किसी प्रकार छिपी नहीं है। आपके पास रहने में वन के जीवों का तो ठीक भी है, यदि देवता के राजा भी आ जायँ, तो मुझे उनका डर नहीं है। स्त्री का परम धर्म तो पति की सेवा करना ही है। फिर आप लोगों की सेवा करने में मुझे क्या दुःख हो सकता है। यह काम तो मैं अपने हित के लिये ही कर रही हूँ। भला, मुझ-सा बड़भागी और कौन इस संसार में होगो, जो अपने पति की अपने मन के अनुसार सेवा शुश्रूषा कर रही

हो। मुझे बिलकुल ही कोई दुःख नहीं है, यह आप विश्वास रक्खें। मैंने सिर्फ़ एक व्रत धारण किया है। वह अब पूरा होने को आया। शायद कहीं इसी कारण से आपको मेरा मुख मलीन-सा मालूम पड़ता होगा। पर अब चिंता न करिए। उस व्रत के पूरे होने को भी सिर्फ ४ ही दिन और रह गए हैं। इसके बाद फिर मुझे कोई भी चिंता न रहेगी। आप पूरा विश्वास रखिए। यह बात मैं माता-पिता से भी कह दूँगी। यदि आप योग्य समझें और अपने ही मुँह से उनसे कह दें, तो इससे बढ़कर और कौन-सी बात हो सकती है! सिर्फ इस व्रत के करने में मुझे तीन दिन तक उपवास करना पड़ेगा।" सावित्री के इस कठिन व्रत की बात सुनकर सत्यवान सहम-सा गया। वह अपने मन में विचार करने लगा—"सावित्री राजकुमारी है। उसने कभी दुःख का नाम तक नहीं सुना। वह किस तरह बिना आहार किए तीन दिन तक रह सकेगी! उसका शरीर इतना कोमल है कि ज़रा देर को भी भोजन न मिले, तो उसका चेहरा उतर जाता है। वैसे ही वह दुबली-पतली हो रही है। फिर इस कठिन व्रत को कैसे कर सकेगी!" पर सावित्री पहले ही से अनेक व्रत किया करती थी। वह आजकल की ललना-ओं के समान सुकुमार न थी। अपने पति के लिये सब कुछ दे सकती थी। अपने व्रत की आज्ञा माँगने को उसने सत्य-

वान को इस तरह विवश किया कि उन्हें आज्ञा देनी ही पड़ी।

जब सत्यवान ने अपनी प्यारी को इस व्रत की आज्ञा दे दी, तब वह माता-पिता के पास गए और उनसे सावित्री के इस कठिन व्रत के विषय में कहा। इतने कठिन व्रत का नाम सुनते ही दोनो सहम-से गए। उन्हें बहुत डर लगने लगा। किंतु द्युमत्सेन पक्के सनातन-धर्म को पालनेवाले थे। व्रत आदि ईश्वर-पूजन के लिये ही राज्य छोड़कर वन में आ बसे थे। वह कभी किसी को धर्म के काम करने में बाधा नहीं डाल सकते थे। फिर अपनी प्राणों से प्यारी बहू को इस प्रकार ईश्वर के भजन में लगी देखकर वह कब उसे रोक सकते थे! उन दोनो ने हर्ष-पूर्वक सावित्री को आज्ञा दे दी। जब सावित्री को यह बात मालूम हुई कि सास-ससुर ने भी उसे इस व्रत के करने की आज्ञा दे दी है, तब उसके आनंद का ठिकाना न रहा। वह बार-बार ईश्वर को धन्यवाद देने लगी। बस, इसी समय सावित्री ने अपना मनोरथ सफल समझ लिया। क्योंकि उसे दिन-रात यही चिंता लगी रहती थी कि कहीं प्रेम के कारण मेरे सास-ससुर मुझे इस काम के करने को रोक न दें।

सब लोगों से आज्ञा पाकर सावित्री ने दूसरे ही दिन से व्रत आरंभ कर दिया; क्योंकि नारदजी के बताए हुए मुहूर्त को

आज से सिर्फ़ तीन ही दिन शेष रह गए थे। सुबह होते ही सावित्री ने सब देवतों को प्रणाम किया, फिर सास-ससुर तथा पति के चरणों में माथा नवाकर उनका चरणोदक पिया। पश्चात् सिर के बाल खोलकर पवित्र जल से स्नान किए और व्रत करना शुरू कर दिया। इस समय सावित्री के सब अंग स्थिर थे; हिलते-डुलते तक नहीं थे। इस समय उसे सिवा देवतों की अराधना के और कुछ नहीं दिखाई देता था। सावित्री की यह पवित्र एकाग्र पति-भक्ति कैसी विचित्र है! वह बार-बार ईश्वर से यही विनती करती थी—"परमात्मा इस संसार में आपके विना मेरी लाज रखनेवाला और कौन है? आप जगत्-पिता हैं, घट-घटवासी हैं, सबके मन की बात जाननेवाले हैं। यदि मैं सच्ची सती हूँ, तो मेरे सौभाग्य की रक्षा कीजिए। मैं उनके विना पल-भर भी जीवित नहीं रह सकती। आप या तो पहले मुझे ही ले लीजिए या मेरी लाज रख लीजिए। आप दीनबंधु हैं, करुणासागर हैं, दया-निधान हैं, भक्तवत्सल हैं। फिर इस दासी को यदि अपना लो, तो कौन कठिन काम है? यह काम तो आपके लिये बिलकुल ही मामूली बात है। आप चराचर के स्वामी हैं, जो चाहें कर सकते हैं। फिर मेरी इस विपत्ति को अलग करने में आप क्यों देर कर रहे हैं? हे नाथ! मैं बार-बार आपसे सिवा एक जीवदान के और कुछ नहीं

चाहती। उनके न रहने पर मेरा संसार में रहना किस काम का है! हे भूमिमाता! तूने इतनी कठोरता क्यों धारण कर ली है? पति से विमुख होने के पहले ही तू मुझे अपने में लीन क्यों नहीं कर लेती। मैंने ऐसा कौन-सा बड़ा भारी पाप किया है, जिसके दोष से आज इस दुखिया की सुधि सबने बिसार दी है। हे देवतो! यदि आप लोग इस समय मेरी ख़बर न लेंगे, तो और कौन बैठा है, जो इस दुखिया की विनती सुनेगा?"

सावित्री-जैसी सुकुमार बालिका के लिये यह साधारण व्रत न था, एक कठिन से भी कठिन तप था। वह एकाग्र-चित्त होकर सत्यनिष्ठा और परिश्रम से प्रत्येक देवता का नाम ले-लेकर उनसे अनेक विनती करती थी। वह इस समय ऐसी मालूम हो रही थी, मानो उसमें जीव ही नहीं हो—कोई काठ की पुतली रक्खी हो। उसकी आँखों से बराबर आँसुओं की धार चल रही थी। मामूली तौर से देखने पर तो यही मालूम होता था कि वह साँस लेना भी छोड़ चुकी है। हम भी ईश्वर से बार-बार यही विनय करते हैं कि हे जगत्पिता! फिर वह शक्ति भारत की प्रत्येक महिला को दे, जिससे इस डूबते देश की नौका पार लग जाय। वास्तव में सावित्री-जैसी सतियों के तपोबल

और सत्य-बल से ही इस देश का नाम संसार-भर में फैला हुआ है।

अपने पति की आयु चाहनेवाली, उनके हित के लिये सब कुछ देनेवाली सावित्री को देवाराधन करते तीन दिन जाते मालूम भी न हुए। उसे इतना तक भी न मालूम हुआ कि इस समय रात है या दिन। बात-की-बात में व्रत पूरा हो गया। चौथे दिन सावित्री ने अपनी देह को सँभाला और स्नान कर व्रत पूरा कर दिया। जिस समय सावित्री पूरा व्रत करके कुटी के बाहर निकली, उस समय सत्यवान भी वहीं खड़ा था। अपनी प्यारी को कुटी में से निकलते देख एकदम टकटकी बाँधकर उसकी ओर देखने लगा। देखते-देखते वह अपने मन में कहने लगा—"सावित्री तो कोई देवी है! वह मनुष्य नहीं है। ज्यों-ज्यों वह कष्ट सहती है, त्यों-त्यों उसका तेज और भी बढ़ता जाता है। इतना कठिन व्रत करने पर उसका मुँह कैसा खिला दिखाई दे रहा है! मुझे यह स्वप्न में भी आशा न थी कि ऐसी धर्मपरायणा स्त्री ईश्वर ने मुझे दी है। अनेक बड़े घरों की स्त्रियाँ तो पलँग से नीचे उतरने या रोटी पकाने में भी अपनी हीनता समझती हैं। पति का चाहे जो हाल हो; पर उन्हें एक पान बनानेवाली, एक रोटी पकानेवाली, एक पानी भर लानेवाली अवश्य चाहिए। इसमें यदि किसी

भी तरह की जरा-सी त्रुटि रह जाती है, तो वे नाराज़ हो जाती हैं; भोजन नहीं करतीं। बेचारे सास-ससुर, पति आदि मनाते-मनाते थक जाते हैं; पर उन्हें तो सिवा क्रोधित होने के और कुछ दिखाई ही नहीं देता। धन्य है सावित्री तेरी अलौकिक बुद्धि को। वास्तव में मैं अपने-से भाग्यशाली किसी भी व्यक्ति को इस संसार में नहीं समझता। कारण यह है कि यदि पति को स्त्री सुलक्षणा मिल गई, तब तो ठीक है और कहीं घर में स्त्री सुलक्षणा नहीं है, तो बेचारा पति चाहे कितना भी उपाय क्यों न करे, वह अपने जन्म में कभी सुखी नहीं रह सकता। एक-न-एक चिंता उसके सिर पर अवश्य ही सवार रहेगी।"

इस समय सूर्य भगवान् भी सावित्री के पतिव्रत धर्म का तेज देखकर अपने मन में लजाते-से हुए पश्चिम की ओर जल्दी-जल्दी भाग रहे थे। आकाशमंडल में अनेक पक्षी सती सावित्री के शुभ दर्शन करने के लिये उड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। सत्यवान अपने एक हाथ में कुल्हाड़ी लिए जंगल की ओर जाने को तैयार था। अपनी प्राणों से प्यारी की वह दिव्यमूर्ति देखने को खड़ा रह गया।

कुछ समय के बाद सत्यवान कुल्हाड़ी लेकर जंगल की ओर जाने लगा। आज ऐसे कठिन समय में पति को कुल्हाड़ी

लिए जंगल की ओर जाते देख सावित्री से न रहा गया। उसने प्रेम से सत्यवान का हाथ पकड़ लिया और जंगल जाने से रोककर बोली—"नाथ! इस समय कहाँ जाते हो? रात अँधेरी है, जंगल का रास्ता है। ऐसे समय में मैं आपको लकड़ियाँ लाने के लिये कभी न जाने दूँगी।" इस प्रकार कहकर अपने मन की चिंता का भाव छिपाने के लिये सावित्री ने कुछ मुसकिरा-सा दिया। अपनी प्यारी की इस तरह की बातें सुनकर सत्यवान ने कहा—"प्रिये! तुम मनुष्य हो या कोई देवी। तुमने तीन दिन तक तो एक पानी का बूँद भी गले के नीचे नहीं उतारा। मुझे तो यही विदित होता है कि तुम अब अपनी आयु पूरी करने पर उतारू हो गई हो। भला! इस संसार में ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो विना कुछ खाए-पिए रह सके। अच्छा तुम जाओ और जो कुछ कुटी में हो, उसे खा-पीकर अपनी भूख शांत करो। तुम राजकन्या हो, इतना कठिन कष्ट सहन करना तुम्हारी शक्ति के बाहर है। क्यों व्यर्थ ही अपने शरीर को सुखाकर लकड़ी के समान कर रही हो। ऐसी सुकुमार बालिकाओं के लिये थोड़ा ही व्रत बहुत है। मुझे तो यही मालूम होता है कि तुमको अपने शरीर का बिलकुल ध्यान ही नहीं है। देखो, तुम्हारी पसलियाँ तक साफ़-साफ़ दिखाई देने लगी हैं। जाओ और भोजन करो।

अब तो तुम्हारा व्रत भी पूरा हो चुका है, फिर क्यों नहीं भोजन करतीं ?"

सावित्री ने कहा—"नाथ ! आप मुझसे बार-बार भोजन करने के लिये न कहिए; नहीं तो पति की आज्ञा न पालने का भारी पाप मेरे सिर आ पड़ेगा, जिसका भार मैं जन्म-भर न सँभाल सकूँगी। मैं विना रात बीते एक दाना भी नहीं खा सकती। मुझे इस समय तिल-भर भी कष्ट नहीं है। आप तो यह जानते ही हैं कि जिस देवता का व्रत किया जाता है, वह जरूर ही उसको पूरा करने की लाज रखता है। आप मेरे कष्ट का बिलकुल ही विचार न करें। आप यह तो बताइए कि रात के समय ऐसे भारी जंगल में जाकर क्या करेंगे ?"

सत्यवान ने कहा—"प्रिये ! आज घर में लकड़ियाँ नहीं हैं। फल-फूल भी पूरे हो गए। यदि तुम रात को न खाओगी, तो फिर भी सबेरे तो खाना ही पड़ेगा। उस समय कहाँ फल-फूल मिल सकते हैं ? सबसे बड़ी बात तो यह है कि लकड़ियों के न रहने से माता-पिता हवन न कर सकेंगे। इससे उनके काम में बड़ी भारी कमी पड़ जायगी। वे विना लकड़ियों के बैठे रहेंगे। इस कारण मुझे वन से लकड़ियाँ लाना बहुत ही आवश्यक है।"

सावित्री बोली—"नाथ ! मैं तो आपसे यह पहले ही कह

चुकी हूँ कि मुझे बिलकुल ही भूख नहीं है, मैं कुछ न खाऊँगी। फिर आप मेरे लिये इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं? यदि आप वन को न जायँगे, तो सास-ससुर के काम में बाधा होगी। विना हवन किए वे कुछ खा-पी नहीं सकेंगे। इस कारण मैं आपको नहीं रोक सकती। पर मैं आपसे एक विनय अवश्य करती हूँ। यदि मुझे आज्ञा हो, तो कहूँ। उसका पूरा करना तो कठिन काम नहीं है; किंतु मेरे मन में इस बात का भारी डर लगा है कि कहीं आप नाहीं न कर दें।" सत्यवान के वचन देने पर वह फिर बोली—"मैंने वन की शोभा अधिक दिनों से नहीं देखी है, इसलिये आज मेरा विचार आपके साथ चलकर वन की शोभा देखने का हो रहा है। आशा करती हूँ, आप मुझे विमुख न करेंगे।"

अपनी प्यारी की इस तरह साहसभरी बातें सुनकर सत्यवान बोले—"देखो प्यारी! तुमने तीन दिन से बिलकुल ही खाया-पिया नहीं है। तुम्हारा शरीर तो पत्ते के समान काँप रहा है। तुम अच्छी तरह से खड़ी भी नहीं रह सकतीं। फिर वन में मेरे साथ कैसे चल सकोगी, जहाँ पर काँटे और पत्थरों के सिवा कुछ भी नहीं है, कहीं-कहीं पर एक पत्थर से दूसरे पर जाने के लिये कूदना पड़ता है, काँटों से बचने के लिये अपना शरीर खूब साधकर पैर रखना पड़ता है। तुम क्यों इस प्रकार दिन-प्रति-

दिन कठिन काम करती जा रही हो। तुम्हारे इन कामों से तो मुझे बड़ी चिंता होती है।"

सत्यवान के इस तरह समझाने और कष्टों का वर्णन करने से सावित्री कब डरनेवाली थी ! उसे तो ये कष्ट अपने प्यारे पति का मुँह देखते ही भूल जाते थे। इस पर इस समय सावित्री के सिर पर तो दूसरी ही चिंता सवार थी। उसका मन कब इन बाधाओं की ओर जा सकता था ! वह साथ चलने के लिये पति से बार-बार विनती करने लगी। अंत में परवश पड़कर सत्यवान ने उसे अपने साथ चलने की आज्ञा दे दी।

अपने पति से वचन लेकर सावित्री सास-ससुर से भी आज्ञा माँगने को गई। अपनी बहू के मुँह से विनयभरी बातें सुनकर वे लोग सोचने लगे—"सावित्री ने आज चार दिन से बिलकुल ही कुछ खाया-पिया नहीं है। वह इतनी कठिन परिश्रम क्यों उठा रही है ? उसका क्या मतलब है ? मालूम होता है, एकाएकी कई प्रकार के दुःख सहने से वह पागल हो गई है !" फिर वे सोचने लगे—"मेरी बहू कोई भी काम विना सोचे-विचारे नहीं करती। किसी भी काम को करने के पहले वह अच्छी तरह से सोच-समझ लेती है, फिर उसे शुरू करती है। वह हमेशा अपने पति की मंगल-कामना के लिये ही व्रत आदि किया करती है। उसके इस समय वन जाने में कोई रहस्य अवश्य

होगा। फिर सत्यवान के साथ वन जाने में क्या बुराई है ?" इस प्रकार मन में तर्क-वितर्क करके वृद्ध दंपति ने भी सावित्री को जाने की आज्ञा दे दी। अपना मनोरथ पूर्ण समझकर सावित्री मन में खूब प्रसन्न हुई और अपने पति के साथ वन में जाने के लिये तैयार हो गई। चलने के पहले सावित्री ने अपने मन में सब देवतों को प्रणाम किया ; उस वन में जितने मुनि वास करते थे, सबको स्मरण कर उनके स्थान पर जाकर अपना माथा नवाया और उनका आर्शीवाद लेकर पति के साथ पीछे-पीछे चली गई।

छठा अध्याय

वन बड़ा भयानक था। पेड़ इतने सघन लगे थे कि वहाँ पर सूर्य की किरणों का आना भी एक कठिन काम दिखाई देता था। कहीं-कहीं सघन कुंज थे। मार्ग स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। चारो तरफ़ मांसाहारी प्राणी घूम रहे थे। सूर्य भगवान् धीरे-धीरे अस्ताचल की ओर चले जा रहे थे। पक्षीगण गगन में झुंड-के-झुंड उड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। धीरे-धीरे अँधेरा हो चला। आकाश में कहीं-कहीं तारे चमकने लगे। सावित्री और सत्यवान दोनो एक दूसरे का हाथ पकड़े चले जा रहे थे। बीच-बीच में सत्यवान इधर-उधर घूमकर सावित्री को वन की शोभा दिखाता था—"यह देखो, वह चिड़िया उड़ी जाती है। उस पेड़ पर मोर नाच रहा है। देखा सावित्री! उसका रूप कैसा अच्छा दिखाई देता है!' बेचारी सावित्री आज क्या देखेगी? उसका मन तो सिवा अपने पति के मुह की ओर के और कहीं जाता ही नहीं था। यदि हवा से पेड़ का पत्ता भी हिलता था, तो सावित्री का कलेजा काँप उठता था। सूखा पत्ता गिरने से सावित्री, यह समझकर कि कोई सत्यवान को लेने तो नहीं आ गया, एकदम चिंतित हो जाती थी। सावित्री को इस

प्रकार चिंतित देखकर सत्यवान ने कहा—"सावित्री ! मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि इस समय तुम्हारा शरीर बिलकुल कमज़ोर हो रहा है, तुम मेरे साथ न चलो। किंतु तुमने मेरी बात न मानी। अब भले कष्ट सहन कर रही हो !" सावित्री बोली—"नाथ ! आपके साथ चलने में मुझे बिलकुल ही कष्ट नहीं है। आपके साथ रहने पर कितनी भी भारी आपत्ति क्यों न हो, मैं उसे बड़ी प्रसन्नता से सहन कर सकती हूँ।" यद्यपि इस समय सावित्री अपने शरीर को ख़ूब सँभाल रही थी ; पर आँसुओं को न सँभाल सकी। वे आँखों से बाहर निकलकर सावित्री के मन के भाव प्रकट करने लगे।

सावित्री को इस प्रकार कष्ट में देखकर सत्यवान ने जल्दी-जल्दी फल-फूल तोड़कर अपनी झोली भर ली। इस समय अँधेरा हो चला था। और अधिक अँधेरा हो ज़ाने के डर से सत्यवान जल्दी से एक सूखे पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ सत्यवान के चढ़ने से उकठा पेड़ हिलने लगा। इधर सावित्री भी आप ही कदली के पत्ते के समान काँपने लगी। सत्यवान जब पेड़ में कुल्हाड़ी मारता था, तब सावित्री को ऐसा मालूम होता था, मानो कोई उसको हड्डियाँ तोड़ रहा हो। धीरे-धीरे पेड़ के नीचे लकड़ियों का ढेर हो गया। सावित्री एकटक अपने पति के मुँह की ओर देख रही थी और कह रही थी—"काठ का बोझ भारी हो गया,

अब उतर आओ।" वह पेड़ के नीचे से बार-बार पुकार रही थी—"उतर आओ, उतर आओ! समय हो गया, वन की राह अँधेरी है, जल्दी उतर आओ।" इसी समय सत्यवान के सिर में पीड़ा होने लगी। वह एक पैर दो पैर करके नीचे उतर आया। अंत में मारे पीड़ा के सत्यवान से न रहा गया। वह वृक्ष के नीचे सावित्री की जाँघ पर अपना पीड़ित सिर रखकर लेट रहा। अपने पति की यह दशा देखकर सावित्री फूट-फूट-कर रोने लगी। वह इधर-उधर देखती थी, कोई भी सहारा दिखाई न देता था। वन में चारो ओर अंधकार छाया हुआ था। कभी-कभी स्यार और वन के अनेक पशु बोल उठते थे। कोई इधर-उधर से घूमता हुआ निकल जाता था। पक्षियों में घुघ्घु के सिवा और किसी की बोली सुनाई नहीं देती थी। कभी-कभी हवा के झोकों से पेड़ अपने पत्ते अवश्य हिला देते थे। कैसा विकट समय था! जो कभी विना अपनी सहेलियों के महल के बाहर क़दम नहीं देती थी, जिसे ज़रा से ही अँधेरे में डर मालूम होता था, वही आज ऐसे भयानक वन में अपने पीड़ित पति का सिर जाँघ पर रक्खे विलाप कर रही थी। उसे किसी भी पशु का डर नहीं मालूम पड़ता था। वह एकटक अपने पति के मुँह की ही ओर देख रही थी और अपने अंचल से उनके मुँह पर हवा करती जाती थी।

प्यारे पति की अवस्था बिगड़ती देखकर सावित्री विलाप कर कह रही थी—"हाय ! अंत समय में मेरा किसी ने साथ न दिया। कितने व्रत और उपवास किए; पर कोई भी पुण्य अंत में मेरे काम न आया। हे करुणामय स्वामी ! क्या तुमने भी दया करना छोड़ दिया ? हाय ! इस दुखिया पर ज़रा भी ध्यान दो। यदि आपको ऐसा ही करना है, तो पहले ही मुझे क्यों न ले लेते ? क्यों यहाँ रहने दिया है ? अब मैं किसका मुँह देखकर जीऊँगी। किसकी मुसकिराती मूर्ति को देखकर अपनी चिंता दूर करूँगी, किससे हँसूँगी, किसके साथ वन में रहूँगी, किसे अपने सुख-दुख का हाल सुनाऊँगी ! जब से मेरा जन्म हुआ है, तब से मैंने किसी को भी दुःख नहीं दिया, विवाह के बाद किसी भी पुरुष का मुँह नहीं देखा। फिर किस भारी अपराध के कारण मुझे इतना कठिन दुख दिया ? अब मैं इन्हें छोड़कर कहाँ जाऊँ ? हे नाथ ! तुम तो कहते थे कि तू मुझे प्राणों से भी प्यारी है, तेरे समान साध्वी और धर्म पर चलनेवाली सुंदरी स्त्री मुझे इस संसार-भर में नहीं दिखाई देती। फिर क्यों आप मुझे इस असार संसार में निराधार और अकेली छोड़कर चले जाना चाहते हो ? हाय ! मैंने आपका ऐसा कौन-सा भारी अपराध किया था, जिससे आप मुझे अलग कर रहे हैं। नाथ ! छाया विना शरीर के कैसे रह सकती है ? मैं भी आपके

साथ चलूँगी। मैं आपसे विलग नहीं हो सकती और स्वर्ग में भी साथ रहकर मैं आपकी सेवा करूँगी।"

वन में सावित्री इस तरह पति के मुँह को देख-देखकर विलाप कर थी। सत्यवान की बेहोशी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। साँस का चलना बंद होता जा रहा था। इसी समय सावित्री को ऐसा मालूम हुआ कि कोई डरावनी मूर्ति उसके सामने खड़ी है। उसके हाथों में पाश और दंड था, पैरों में चाँदी की पाँवड़ी (खड़ाऊँ), कानों में किरीट और शरीर पर जोगिया कपड़े थे। उस मूर्ति के आते ही सावित्री की आँखों के सामने उजेला-सा हो गया। उसे देखकर सावित्री सहम गई। वह विचार करने लगी—"शायद यही यमराज हैं, जिन्हें लोग धर्मराज कहते हैं। जब यह स्वतः मेरे पति को लेने के लिये आए हैं, तब मैं कैसे उन्हें बचा सकती हूँ! अच्छा, इनसे पूछना तो चाहिए कि आप कौन हैं?" अपने मन में इस तरह विचारते ही सावित्री सावित्री न रही। उसके पतिव्रत-धर्म और व्रत आदि ने उसका साथ दिया। वह एकदम ऐसी हो गई, मानो कोई स्वप्न देख रही हो। वह अपते धर्म के प्रताप से धर्मराज से बातें करने को तैयार हो गई। सावित्री हाथ जोड़कर बोली—"प्रभो! आप कौन हैं? आपकी मूर्ति देखकर मेरे मन में यही भ्रम होता है कि कहीं आप धर्मराज न हों!"

सावित्री का स्थिर भाव देखकर धर्मराज मन-ही-मन कहने लगे—"यह कैसी स्त्री है ! हम तो इसके पति के प्राण लेने आए हैं, किंतु इसके मन में चिंता के कोई भी भाव दिखाई नहीं देते। यह अभी ही कैसा विलाप कर रही थी, जिसके कारण पशु-पक्षी तक दुखित होते थे; पर मुझे देखते ही यह ऐसी सावधान हो गई है, मानो इसे कोई सहारा मिल गया हो। यह कैसे गंभीर भाव से बोल रही है ! वास्तव में सावित्री पूरी साध्वी है।"

फिर धर्मराज ने सावित्री की ओर स्नेहभरी दृष्टि से देखा और कहा—"हाँ ! सावित्री ! हम ही यमराज हैं। लोग हमें धर्मराज कहकर पुकारते हैं। हम तुम्हारे पति के प्राण लेने को आए हैं। आज तुम्हारे पति की उमर पूरी हो गई। अब तुम इन्हें छोड़ दो कि हम इनका प्राण लेकर अपने घर जायँ।"

अब तो सावित्री को पूरा निश्चय हो गया। वह मन में सोचने लगी—"यह हमारे पति को छोड़नेवाले तो हैं ही नहीं; फिर बातचीत करने में क्या बुराई है। इससे बढ़कर मुझे और कौन-सी कठिन सजा हो सकती है, जिसके डर के कारण मैं इनसे न बोलूँ।" सावित्री ने कहा—"महाराज ! मैंने सुना था कि आपके दूत आकर प्राणियों के जीव को आपके पास ले जाते हैं। फिर आपने यहाँ तक आने का कष्ट क्यों सहा ?"

धर्मराज बोले—"सावित्री ! तुम्हारा कहना ठीक है; पर मेरे

दूत हर एक आदमी को नहीं ले जा सकते। जो जैसा आदमी होता है, उसके साथ वैसा ही वर्ताव किया जाता है। सत्यवान के धर्म के तेज से मेरे दूत उसके पास तक नहीं आने पाते थे। तिस पर भी तुम-जैसी पतिव्रता की गोद में सिर रक्खे हुए आदमी को मेरे सिवा और कौन ले जा सकता है? यदि ऐसी पतिव्रता स्त्री किसी के भी मरते समय में अपनी लात का स्पर्श कर दे, तो उसे भी ले जाने की हिम्मत मेरे दूतों को नहीं हो सकती। फिर तो जो मनुष्य उस स्त्री का जीवनदाता, सुखदुःख का संगी है, उसे लेने को वे कैसे हिम्मत कर सकते हैं? अब तुम घर को लौट जाओ। हम इसके प्राण लेकर जल्दी अपने घर को जाना चाहते हैं।"

स प्रकार बातचीत करके सावित्री ने अपने पति का सिर गोद से नीचे रख दिया। यमराज ने सत्यवान के प्राणों को एक पाश में बाँध लिया और वहाँ से चलने लगे। यमराज अपने मन में समझते थे कि अब काम बन जायगा। सावित्री यहाँ से रोती-बिलपती अपने घर को लौट जायगी। किंतु सावित्री का लौटना कोई सहज काम न था। वह अपने मन में सोचने लगी—"जब मैं अपने पति के सुखदुःख की संगिनी हूँ, तब क्यों न उनके साथ जाऊँ। मुझे उनके साथ जाने में कौन रोक सकता है? यदि मैंने जन्म-भर किसी को दुःख न दिया होगा,

अपने धर्म पर सदा अचल बनी रही होऊँगी, पति की पूरी तरह से सेवा की होगी, पतिव्रत धर्म का पालन किया होगा, तो उनके साथ जाने में कोई भी बाधा नहीं आ सकती। मुझ-से कोई एक बात तक नहीं कर सकता। जब पति ही यह नहीं है, तब मैं इस संसार में रहकर क्या करूँगी। जहाँ पति हैं, मुझे वहीं सब सुख है।" इस प्रकार अपने मन में सोचकर सावित्री यमराज के पीछे-पीछे चलने लगी। यद्यपि चार दिन के व्रत करने से उसका सारा शरीर शिथिल हो रहा था, तौभी इस समय वह यमराज के पीछे इस तरह जा रही थी कि उसे देखकर और तो ठीक भी है, स्वतः यमराज भी दंग रह गए।

यमराज अपने जोरभर खूब तेज़ जा रहे थे; पर सावित्री भी कब पीछे रहनेवाली थी। वह भी साथ जा रही थी। कुछ आगे चलने पर ज्यों ही धर्मराज ने पीछे मुड़कर देखा, त्यों ही उन्हें सावित्री दिखाई पड़ी। सावित्री को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन में कहने लगे—"स्त्रियों में पतिव्रत-धर्म का ही पालन करने से कैसी शक्ति आ जाती है! मुझे हर एक आदमी नहीं देख सकता। पर सावित्री ने अपने व्रत और तप के प्रभाव से मुझे देख लिया। अब वह मेरे इतने जल्दी-जल्दी चलने पर भी पीछा नहीं छोड़ती। धन्य पतिव्रत धर्म का प्रभाव!"

सावित्री को पीछे आते देख धर्मराज कुछ क्रोधित होकर बोले—"सावित्री! यह क्या है! तुम कहाँ आ रही हो? तुम हमारे साथ अब आगे न जा सकोगी। तुम दूर आ गई, अब अपने घर को लौट जाओ। अब तुम्हारा और सत्यवान का साथ नहीं रहा। जहाँ तक मनुष्य आ सकता है, वहाँ तक तो तुम आ गई, अब इसके आगे तुम्हारा जाना कठिन है। तुम व्यर्थ ही क्यों कष्ट सह रही हो? देखो, तुम्हारे पति की देह वैसी ही पड़ो है। उसका न-मालूम क्या हाल होगा। अब तुम जाओ, यह सब बात अपने सास-ससुर से कहो। पश्चात् अपने पति की अंतिम क्रिया करके उनके ऋण से उऋण हो जाओ।"

यमराज से सावित्री ने कहा—"महाराज! आप अब क्या मुझे घर जाने को कहते हैं? मेरा घर तो वही है, जहाँ मेरे पति हैं। विना पति के मुझे स्वर्ग नरक के बराबर है। जो स्त्री का सर्वस्व है, वह तो आप अपने साथ लिए जा रहे हैं। अब मैं किस लिये घर जाऊँ? मेरा वहाँ कौन बैठा है प्रभो! आप तो सब बातें जानते हैं! आप देव हैं और मैं मनुष्य। फिर बताइए मैं आपसे क्या कह सकती हूँ। पर इतना अवश्य जानती हूँ और यह बात शास्त्र भो बताते हैं कि स्त्री अपने पति के ऋण से उऋण नहीं हो सकती। जो स्त्री जन्म-भर पति की सेवा करके अपना जीवन व्यतीत करती है, वही सच्ची स्त्री

है, सच्चा धर्म जाननेवाली है। यही उद्देश सामने रखकर मैं यह कार्य कर रही हूँ।"

सावित्री की ज्ञान-पूर्ण बातें सुनकर धर्मराज प्रसन्न हो गए। वह अपने मन में सोचने लगे—"वास्तव में सावित्री पूरा धर्म जननेवाली है। आज इससे छुटकारा पाना कोई सहज काम नहीं है। अच्छा हो कि इसे कोई वरदान देकर टाल दें। उन्होंने कहा—"सावित्री! मैं तुम्हारे पतिव्रत-धर्म को देखकर प्रसन्न हूँ। अब तुम्हें सिवा सत्यवान के और जो कुछ माँगना हो, माँग लो। मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छानुसार वरदान दूँगा।" धर्मराज की पसन्नता की बातें सुनकर सावित्री मन में सोचने लगी—"मैं तो यह नहीं समझती थी कि यमराज मुझ पर इतनी जल्दी प्रसन्न हो जायँगे। किंतु इनका प्रसन्न होना या न होना, दोनो बराबर है; क्योंकि मुझे जो चाहिए, वह तो आप साथ में लिए जा रहे हैं। फिर मुझे और किस बात की आवश्यकता है! मैं यदि अपने सास-ससुर की आँखें खुलने और अपना पुराना राज्य पाने को कहूँ, तो इसमें भी कुछ भलाई हो सकती है।" यह सोचकर वह "बोली—महाराज! मेरे सास-ससुर अंधे हो गए हैं; यदि आप प्रसन्न हैं, तो उनके नेत्र फिर से अच्छे कर दीजिए। वे फिर अपने राज्य के मालिक बन जायँ।" यमराज ने कहा, अच्छा यही होगा, और आगे को जाने लगे।

कुछ दूर जाने पर जब फिर यमराज ने पीछे मुड़कर देखा, तो उन्हें सावित्री फिर दिखाई दी। सावित्री को पीछे आते देख धर्मराज बहुत अचंभे में आए! वह सोचने लगे—"मैंने कितने मनुष्यों के प्राण हरण किए होंगे; पर ऐसा समय मुझे कभी नहीं आया। वरदान भी ले चुकी, फिर भी सावित्री मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ती? यह तो बहुत बुरी बला लगी है। मैं इसे कैसे लौटा दूँ।" ज्यों ही धर्मराज सावित्री की तरफ़ मुँह करके खड़े हुए, त्यों ही उन्हें उसके शरीर में से एक अपूर्व तेज निकलता हुआ दिखाई दिया। उसे देखकर यमराज ने अपने मन में कहा—"यह सब कारण पतिव्रत-धर्म का ही है। इसने तो यह बात बिलकुल अनहोनी कर दी। जिसका मुझे स्वप्न में भी ध्यान न था, वह आज आँखों से देख रहा हूँ!" वह सावित्री को समझाकर कहने लगे—"बेटी! तुम तो विना ही किसी विघ्न-बाधा के चली आ रही हो! तुम मेरे साथ चलते-चलते थक जाओगी। कहाँ मेरी इतनी जल्दी की चाल और कहाँ तुम्हारी चाल! अब तुम शीघ्र ही अपने घर को लौट जाओ। क्यों व्यर्थ ही कष्ट उठा रही हो। अब तुम अपना शरीर साथ लेकर मेरे साथ नहीं चल सकतीं। यहाँ से आगे मनुष्य शरीर-सहित नहीं जा सकता। अब मैं भी अंतर्द्धान होना चाहता हूँ। तब तुम कैसे हमारे साथ चलोगी?" धर्म-

राज के इस प्रकार कहते ही उनके पैरो में बेड़ियाँ-सी पड़ गईं। भला वह इतनी पतिव्रता, इतनी साध्वी सावित्री को छोड़कर कहाँ जा सकते थे! यमराज बार-बार अंतर्द्धान होने की कोशिश करने लगे; पर उनके सब उपाय निष्फल हुए।

यमराज की बातें सुनकर सावित्री ने कहा—"महाराज! आप धर्मराज हैं, धर्म का उपदेश देना आपको सर्वथा ठीक है; पर इस समय आप जा कहते हैं, यह बिलकुल अनुचित है। यदि मुझे पति के साथ जाने में कष्ट होगा, तो फिर सुख किसके साथ हो सकता है? जब देह में जीव नहीं रहता, तब उसका चाहे जो करिए, फिर तो वह मिट्टी ही हो जाती है। आप तो साक्षात् धर्मराज हैं, फिर सब बातें जानते हुए भी क्यों मुझसे ऐसा कह रहे हैं? जब लोग राह में चलते हैं, तब यदि वे एक स्थान के न हों, पहचानते भी न हों, तो भी उनमें किसी समय ऐसी मित्रता हो जाती है कि वे अपने सगे भाई से अधिक प्रिय हो जाते हैं। मैं तो आपके साथ इतनी दूर से आ रही हूँ, बातचीत कर रही हूँ। तब तो मुझमें और आपमें भी भाई-बहन का संबंध हो गया। अपने साथी को निराधार छोड़ने में बड़ा भारी पाप लगता है, यह बात भी आपसे किसी तरह छिपी नहीं है। फिर क्यों ऐसा बातें कर रहे हैं?"

सावित्री के उपदेश-पूर्ण वचन सुनकर धर्मराज अपने मन

में सोचने लगे—"अब क्या करूँ ? इधर यह मेरा पीछा नहीं छोड़ती, उधर ब्रह्मा का लिखा मिटता है ! यह कैसी विकट समस्या है ! क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। मैं इसे कितनी तरह से समझाता हूँ, कितना भय दिखाता हूँ ; किंतु इसकी बातों के आगे मेरी एक भी नहीं चलती। इस तरह सोचकर वह सावित्री से बोले—"देखो सावित्री ! अब तुम मेरे साथ न आओ। तुम्हें सत्यवान को छोड़कर और जो कुछ वर-दान माँगना हो, माँग लो; पर अब घर लौट जाओ। क्यों व्यर्थ ही मुझे छेड़ रही हो ? देखो, अब मैं अधिक नहीं ठहर सकता, जो माँगना हो सो माँग लो।"

बेचारी सावित्री को सिवा सत्यवान के और क्या चाहिए ! कहते हैं, अंधे को क्या चाहिए—दो आँखें ! सत्यवान का छोड़ना तो कठिन है ही, इसलिये धर्मराज का वचन पूरा करने को अपने पिता के यहाँ संतान पैदा होने का वचन ले लेना ठीक होगा। ऐसा सोचकर वह बोली—"महाराज ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं, तो मेरे पिता के घर पुत्र पैदा हो, यह वर-दान दीजिए।"

यमराज 'एवमस्तु' कहकर आगे बढ़े, तो फिर भी सावित्री को पीछे देखा। वह बोले—"सावित्री ! तू मुझसे वरदान भी लेती जाती है और लौटती भी नहीं ! इस बात का क्या कारण

है ? अब तू जल्दी लौट जा। देख, मैं अब अंतर्द्धान होता हूँ।" धर्मराज की बातें सुनकर सावित्री बोली—"महाराज ! मैं तो एक क्षुद्र नारी हूँ। मुझे आपसे बढ़कर और कहाँ संग मिल सकता है। प्रभो ! मैं तो आपका साथ नहीं छोड़ सकती। आप चाहे मुझे छोड़ दें, तो मेरा क्या वश है। महाराज ! आपका साथ मैं तभी छोड़ूँगी, जब आप मेरे साथ मेरे पति को कर देंगे। विना पति के आप कहें कि मैं एक क़दम भी पीछे लौट जाऊँ, तो मैं नहीं जा सकती।"

इस समय यमराज बड़े संकट में पड़े। वह सोचने लगे—"अब तो मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ! इधर विधि का लिखा मिटता है, उधर सावित्री अपनी धर्म-रूपी रस्सी से बाँध रही है।" कुछ देर तक तो धर्मराज सन्न होकर खड़े रहे। फिर वह सावित्री से बोले—"सावित्री ! जो बात असंभव है, उसे मैं कैसे संभव कर सकता हूँ ? मैं फिर तुम्हें वर देने को तैयार हूँ। जो चाहो माँग लो; पर अब मेरा पीछा छोड़ दो।"

सावित्री ने कहा—"महाराज ! आप मेरे पति को नहीं छोड़ सकते, यह बात मुझे जिस समय सुन पड़ती है, उसी समय हृदय पर बाण-सा लग जाता है। शास्त्रों में लिखा है कि विना संतान के मनुष्य की गति नहीं होती। उसका वंश भी नहीं चलता। इस कारण आप मुझे यह वर दें कि मेरे

यहाँ पुत्र उत्पन्न हों, जिससे मेरे सास-ससुर का वंश चलता रहे।"

यमराज बोले—"अच्छा सावित्री! मैंने तुझे यही वर दिया। तेरे यहाँ जो पुत्र होंगे, उनकी बराबरी करनेवाला कोई भी मनुष्य इस संसार में न मिलेगा। वे पूरे धर्म पर चलनेवाले होंगे।" इस तरह का वर देकर यमराज ने फिर सावित्री की बात भी न सुनी और जल्दी-जल्दी चलने लगे। किंतु सावित्री भी कब पीछा छोड़नेवाली थी। वह भी पीछे-पीछे हो चली। इस समय धर्मराज अपनी शक्ति-भर जल्दी-जल्दी चल रहे थे। वह अपने मन में समझते थे कि अब सावित्री अवश्य ही पीछे रह जायगी। वह कहाँ तक मेरे साथ चलेगी। पर, जब उन्होंने कुछ दूर चलकर फिर पीछे देखा, तब भी सावित्री को अपने पास खड़ी पाया। अब तो धर्मराज आपे के बाहर हो गए। वह बोले—"अब तो बड़ा अनिष्ट हुआ। यह तो शरीर-सहित ही देवों के लोक में पहुँची जा रही है! वह बड़े ज़ोर से चिल्लाकर बोले—"देख सावित्री! अब आगे न आ। यह क्या करती है! अब यहाँ से आदमी शरीर लेकर नहीं जा सकते। विधाता की बनाई हुई सीमा की रक्षा कर। यदि तू नहीं लौटना चाहती है, तो अपना शरीर छोड़।"

सावित्री ने कहा—"महाराज! धर्म के लिये मैं सब कुछ

देने को तैयार हूँ। किंतु एक विनय अवश्य करती हूँ। उसे सुन लीजिए, फिर जैसा आपके ध्यान में आवे, वैसा करना। आपने अभी मुझे जा पुत्र होने का वर दिया है, उसका ध्यान करिए। जब मेरे पति को आप अपने साथ ले जायँगे, तब वह वचन कैसे पूरा होगा ? मैं भी शरीर छोड़कर साथ में चल रही हूँ। आपके पास बैठकर अपने पति की सेवा करूँगी। सतीधर्म से बढ़कर इस संसार-सागर में कोई धर्म नहीं है। यदि आप अपना कर्तव्य पूरा कर रहे हैं, तो फिर मैं ही अपना कर्तव्य क्यों न पालन करूँ। मुझे तो यही मालूम है कि कर्मफल ही से भाग्य की रचना होती है। यदि कर्मफल का नियम न होता, तो यह संसार चल ही नहीं सकता था। देखिए सूर्य और चंद्र भी अपना कर्तव्य करते हैं। यदि ये एक दिन भी अपना कर्म करना भूल जायँ, तो न-मालूम इस संसार का क्या हाल हो। कर्म के ही फल से मेरे सास-ससुर के नेत्र जाते रहे थे। मेरे कर्म के बल से अब वे अच्छे हो गए होगें। मेरे माता-पिता भी कर्मफल ही से संतानहीन थे। जब उन्होंने तपस्या की, उनका काम परमात्मा को मालूम हुआ, तब उन्होंने उसके कर्म के अनुसार मुझे पैदा किया था। मैं भी अपने कर्मों के फल से आपके साथ यहाँ तक चली आई ; नहीं तो ऐसा कौन मनुष्य है, जो विना ही कर्म किए इतना कठिन

काम कर सकता था। अपने कर्म के अनुसार ही आपने यह काम किया है। मैं भी अपने कर्मों के ही फल से पति से विहीन हुई हूँ। कर्मों के ही अनुसार आज मेरे पति के प्राण आपके हाथ में हैं। किंतु अब मैं भी उसी कर्म के कारण फिर से अपना सौभाग्य पाने की अधिकारिणी हूँ। यदि इस समय भी मेरे कर्मों का अंत न हुआ हो, तो आप आगे जा सकते हैं; पर यदि मेरे वे सब कर्म पूरे हो गए हों, तो मेरे पति को वापस कर अपना नाम इस संसार में बढ़ाइए। भला मुझे इससे अधिक उपकारी और कौन मिलेगा? यदि आप मेरे पति के प्राणों को वापस न करेंगे, तो मैं अपना कर्म छोड़कर घर कैसे वापस जा सकती हूँ। घर पर मेरा कौन बैठा है? मुझे तो यही मालूम होता है कि आपने संसार के मायाजाल में फँसकर अपना कर्तव्य-कर्म भुला डाला है।"

सावित्री के इस तरह उपदेशप्रद वचन सुनकर यमराज की आँखें खुल गईं। वह जिस अहंकार में पड़े थे, अब वह दूर हुआ। उन्हें कर्म का फल विदित हो गया। इस समय उनके आनंद का ठिकाना न रहा। वह बहुत प्रसन्न होते हुए बोले—"सावित्री, तेरी बातों ने मुझे एक बड़ी कठिन नींद से जगा दिया। वास्तव में

कर्म ही प्रधान है। अच्छा, अब मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तू अपने पति के साथ जन्म-भर रह। जिस तरह तूने अपने पति की अभी तक सेवा की है, उसी तरह सेवा करके अपना जन्म सुफल करना। हमेशा दूसरी महिलाओं को भी यही उपदेश देना, जिससे वे भी तेरे समान धर्म पर चलनेवाली और पतिव्रत-धर्म पालनेवाली बनें।"

इस प्रकार सावित्री को वरदान देकर धर्मराज ने सत्यवान का जीव छोड़ दिया। अपने प्यारे पति को फिर से जीवित समझकर सावित्री के आनंद का ठिकाना न रहा। इस समय उस जीव को लेकर सावित्री जल्दी-जल्दी अपने पति की देह के पास आई। उसके मन में इतनी प्रसन्नता हो रही थी कि जो राह सावित्री ने धर्मराज के साथ बड़े कष्ट से पूरी की थी, वह अब उसे ऐसी मालूम होने लगी, मानो बिलकुल चली ही न थी। सावित्री के मन में इतनी प्रसन्नता आई कि वह कुछ समय तक के लिये तो बेहोश-सी हो गई। अस्तु, सावित्री को यमराज के पास से अपने पति की देह तक आने में बिलकुल ही समय न मालूम पड़ा। वह बात-की-बात में अपने पति के शरीर के पास आ गई।

कुछ समय बाद जब सावित्री सचेत हुई, तब उसे फिर ज्ञान

आया। वह अपने पति की नाड़ी पर हाथ रखकर उसका चलना देखने लगी। कभी उनकी नाक के पास अपना हाथ ले जा-कर साँस का चलना देखती थी। सावित्री को धीरे-धीरे मालूम होने लगा कि मेरे प्राणपति के प्रत्येक अंग में धीरे-धीरे रक्त का संचार होने लगा है। जो अभी अकड़कर लकड़ी की भाँति हो गए थे, वह अब कभी-कभी हिलने भी लगे हैं। इस समय सत्य-वान ऐसा मालूम पड़ता था, मानो सो रहा हो। सोते समय मनुष्य की जिस प्रकार अवस्था हो जाती है, उसी तरह सत्यवान की दशा हो रही थी। ज्यों हो सावित्री ने अपने पति को सोने की अवस्था में समझा, त्यों ही वह प्रेम में विह्वल हो गई। उसका शरीर पुलकित हो गया, गला भर आया। आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगे। वह बार-बार कुछ कहना और अपने पति को जगाना चाहती थी; अपनी मुरझाई लता को फिर से लहलहाती हुई देखना चाहती थी; पर प्रेम के कारण उसके मुँह से कोई शब्द न निकलता था। अंत में कुछ सावधान हो-कर वह अपने पति की देह को हिलाकर 'प्यारे! प्रियतम! प्राणपति! जीवनदाता!' आदि कहकर बार-बार पुकारने लगी।

ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है। सत्यवान ने भी अपनी दुखिया पत्नी की आशा पूरी करने को, उसके इस अटूट परि-

श्रम को सार्थक करने को, उसका पतिव्रत-धर्म अटल रखने को अपनी करवट बदली और दोनो हाथों से अपनी आँखें मल-कर खड़ा हो गया। अपने पति की मुसकिराती मूर्ति को सामने खड़ी देखकर सावित्री उनके चरणों पर गिर पड़ी। उसकी आँखों से प्रेम के आँसुओं की निरंतर धार बह चली। अपनी प्यारी का यह हाल देखकर सत्यवान चकित-सा हो गया। उसने ज़ोर भरके सावित्री को उठा लिया। फिर बोला—"प्रिये! यह क्या? इस समय इतनी रात को हम दोनो कहाँ हैं।

सावित्री बोली—"नाथ! जब से आप यहाँ लकड़ियाँ काटने को आए हैं, तब से अभी तक लौटकर आश्रम को नहीं गए। लकड़ी काटते-काटते आपके सिर में बड़े ज़ोर से दर्द होने लगा। वह दर्द यहाँ तक बढ़ा कि आप बेहोश हो गए और मेरी जाँघ पर सिर रखकर लेट रहे। मैं तभी से आपके पास बैठी-बैठी विलाप कर रही थी। अब बताइए आपका शरीर कैसा है?"

सत्यवान ने कहा—"सावित्री! मुझे सिर की पीड़ा का तो बिलकुल ही ख़याल नहीं है। सिर्फ़ जान पड़ता है कि मुझे घोर निद्रा ने आ दबाया था। इस समय मेरा शरीर तो ठीक है; पर कमज़ोरी अवश्य है। मुझे आज ऐसा स्वप्न दिखाई

दिया है, जो मैंने इस जन्म में कभी नहीं देखा। जब से मैंने वह स्वप्न देखा है, तभी से मेरी देह शिथिल-सी होने लगी है। ज्यों ही मुझे मेरे स्वप्न का ध्यान आता है, त्यों ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बड़ा डर मालूम पड़ता है। सुनो, मैं तुम्हें वह स्वप्न सुनाता हूँ; पर तुम डर न जाना। मैंने देखा है कि एक बड़ा डरावना मनुष्य मेरे पास आया है। वह लाल रंग के कपड़े पहने है। वह ज़बर्दस्ती मेरे शरीर को टाँगकर भागता जा रहा है। तुम उससे बार-बार विनय करती हो, उसके पीछे-पीछे दौड़ती जाती हो; पर वह तुम्हारी एक भी बात नहीं सुनता। मैं भी उसके पास से भागने का उपाय करता हूँ; पर मेरा यत्न बेकाम हो जाता है। उसने मेरे शरीर को इस तरह बाँध लिया है कि मेरे हाथ-पैर तक नहीं चलते। सावित्री! यह कैसा डरावना स्वप्न है! क्या तुम बता सकती हो, इसका क्या कारण होगा?"

सावित्री यह बात फिर से याद आते ही विकल हो उठी। उसके रोंगटे खड़े हो गए। वह कहने लगी—"प्यारे! स्वप्न का क्या पूछना है। इस अवस्था में मनुष्य थोड़ी देर के लिये असीम आनंद का सुख देखने लगता है। जो कंगाल है और कभी भर पेट रोटियाँ तक नहीं पाता, अच्छे-अच्छे व्यंजन तो देखे ही नहीं, वह भी इस अवस्था में राजा बन जाता है। कभी-

कभी स्वप्न में इतना दारुण दुःख दिखाई देता है, जिसे देखकर आदमी एकदम चिल्ला उठता है। कोई-कोई तो अपना बिस्तर छोड़कर भागने लगते हैं। प्यारे! स्वप्न तो स्वप्न ही है। उसकी बातें छोड़ो। हम लोगों को यहाँ आए बहुत समय हो गया। माता-पिता घबराते होंगे। वे अपना संध्या का भजन व पूजन भी न कर पाए होंगे। रात भी ज्यादा हो गई है। चारो ओर अंधकार दिखाई देता है। यहाँ से रास्ता का मिलना भी सहज नहीं है। इस कारण जल्दी करो। अपने आश्रम की ओर लौट चलो।"

सावित्री की बातें सुनकर सत्यवान को कुछ सांत्वना हुई। वह बोले—"अच्छा चलो, चलें। मुझे भी माता-पिता के दुखः की याद आते ही बड़ा भय मालूम पड़ने लगता है। मैं कैसा पापी हूँ, जो यहाँ पड़ा-पड़ा स्वप्न देखता रहा और माता-पिता की कुछ भी सुध न की! देखो, वे अभी तक भूखे बैठे होंगे। हम लोगों को आया न देख बहुत घबराते होंगे। ईश्वर भी कैसा निर्दयी है! उसने दोनो को नेत्ररहित कर दिया। इस दशा में शायद वे कहीं हम लोगों को ढूँढने ही निकले होंगे, तो कहाँ मारे-मारे फिरेंगे! अब देर न करो, चलो, जल्दी घर चलें।"

इस प्रकार अपनी प्राणों से प्यारी सावित्री से कहकर

ज्यों ही वह सावित्री के कंधे पर हाथ रखकर एक-दो क़दम चला, त्यों ही उसका शरीर बहुत काँपने लगा। इस समय सावित्री को यही मालूम होता था कि यदि मेरे पति एक-दो क़दम और चलेंगे, तो अवश्य ही धरती पर गिर पड़ेंगे। वह बोली—"नाथ ! आपका शरीर बिलकुल कमज़ोर हो रहा है। आप घर तक नहीं चल सकते। मेरी तो यही राय है कि आज की रात, जो थोड़ी और बची है, यहीं बिता दें। सबेरा होने पर रास्ता भी साफ़-साफ़ दिखाई देने लगेगा और हम लोग भी सकुशल घर पहुँच जायँगे।"

सत्यवान बोले—"नहीं सावित्री ! नहीं। मुझको माता-पिता की सेवा करने में कष्ट बिलकुल हो ही नहीं सकता। माता-पिता मुझे और तुमको अभी तक आया न देख बहुत व्याकुल हो रहे होंगे। मैं अपने जी-भर उन्हें कभी दुःखित नहीं करना चाहता। क्योंकि उन्होंने मुझे जन्म दिया है, कितना कष्ट सह-कर इतना बड़ा किया है। मैं तो उन्हें ईश्वर के समान पूज्य मानता हूँ। यदि उनकी सेवा करने में मेरा यह शरीर तक लग जाय, तो भी चिंता नहीं। जब मैं छोटा रहा होऊँगा, तब उन्होंने मुझे कितने कठिन परिश्रम से पाला होगा। अब मैं उन्हें बुढ़ापे में क्यों कष्ट दूँ ? दूसरी बात यह है कि यदि हम लोग आज माता-पिता के पास न पहुँचेंगे, तो संभव है कि वे

अपने प्राण न रख सकेंगे। वह मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा समझते हैं। जब वे इस असार संसार को छोड़कर चले जायँगे, तब फिर मैं भी किस प्रकार यहाँ रह सकता हूँ। मैं भी उनकी सेवा करने को उन्हीं के साथ चला जाऊँगा।"

सत्यवान के मुँह से इस तरह कठिन शब्द सुनकर सावित्री से न रहा गया। वह विकल होकर रो उठी। भला! इतनी साध्वी, इतनी पतिव्रता स्त्री अपने सामने अपने पति के मुँह से किस प्रकार ऐसे कठिन शब्द सुन सकती थी? वह एकदम अपने पति के गले से लिपटकर रोने लगी। फिर उसने जल्दी से एक कपड़े में सत्यवान के बीने हुए फल-फूल बाँध लिए। लकड़ियों के गट्ठा में कुल्हाड़ी को रखकर उसे सिर पर रख अपने पति का हाथ एक हाथ में लेकर उन्हें सहारा देती हुई आश्रम की ओर चल पड़ी। एक तो सावित्री इतनी सुकुमार थी, तिस पर भी ४ दिन तक विना आहार का व्रत, अपने पति को पुनः पाने के लिये उतना कष्ट! पर इन सब बातों पर उस साध्वी ने बिलकुल ही ध्यान न दिया। अपने शरीर के कष्ट की ज़रा भी परवा न की और अपने आश्रम की ओर जाने लगी। धन्य है सावित्री, तेरी असीम पतिभक्ति को! जो स्त्री पति को स्वप्न में कष्ट देना या देखना नहीं चाहती है, वह भला फिर अपने पति के मुँह से कैसे वैसे शब्द सुन सकती है!

स्त्री का तो सुख दुःख सब पति ही है। यदि कोई महिला कितने ही सुख में क्यों न रहे; पर यदि वह पति-सुख से विहीन है, पति-सेवा से वंचित है, तो वे सुख उसके लिये कभी सुख-दायी नहीं हो सकते; जितने होंगे दुःखदायी ही होंगे। सावित्री अपने मन में सोचती जाती थी—"ईश्वर मेरे इस अपराध को क्षमा करेंगे। मैंने भी बड़ा भारी पाप किया, जो अपने सामने पति को इतना कष्ट दिया, जिससे अधीर होकर उन्हें मुझसे ऐसे वचन कहने पड़े।" सावित्री इस तरह अपने मन को बार-बार धिक्कारती हुई और अपने पति को सहारा देती हुई आश्रम के पास पहुँच गई।

सातवाँ अध्याय

सत्यवान ने जो कुछ सावित्री से कहा था, वही हाल दोनों ने कुटी के पास आकर देखा। सत्यवान के माता और पिता अपने प्राणों से प्यारे पुत्र तथा पतोहू को वन से आने में देर समझ बहुत दुःखित हुए। वे सारे वन में यहाँ-वहाँ भटकते फिरे, कहीं भी सत्यवान तथा सावित्री का पता न पाया। सत्यवान और सावित्री भी धीरे-धीरे चलते सबेरे ही अपने माता-पिता के पास पहुँचे थे। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि आश्रम के पास बहुत-से मुनि जमा हैं। सब लोग पिता तथा माता को समझा रहे हैं। वे भी कहते हैं कि यदि थोड़ा दिन चढ़े तक मेरा पुत्र और बहू न आवेगी, तो हम दोनो भी यह संसार छोड़कर चल बसेंगे। भला जिनके सहारे हम लोग इस वन में टिके हैं, जब वह हमारी सुधि बिसार देंगे, तो फिर हम यहाँ रहकर किसका मुँह देखेंगे ? सत्यवान और सावित्री को दूर से ही आते देख मुनि को धीरज बँध गया। जब दोनो ने अपने माता-पिता तथा वनवासी मुनियों के चरणों में माथा नवाया, तब सब लोगों ने उन्हें खूब आशीर्वाद दिए। मुनि ने अपने पुत्र को छाती से लगा लिया। इस समय ईश्वर

की असीम कृपा से अंधमुनि तथा उनकी पत्नी को दीखने लगा था। यह प्रथम ही समय था, जब कि द्युमत्सेन तथा उनकी स्त्री ने सावित्री को अपनी आँखों से देखा था। उसे देखते दोनो के आनंद का ठिकाना न रहा। कुछ समय तक बैठकर सब मुनि अपने-अपने आश्रमों को चले गए। सावित्री ने भी सास-ससुर का पूजन हो जाने के बाद भोजन कर अपना व्रत का पारण किया। फिर पहले के समान पतिसेवा, सास-ससुर की सेवा, घर का काम आदि योग्य रीति से करने लगी।

राजा अश्वपति को नारदजी की कही हुई बात कब भूल सकती थी! वह अपने मन में नित्य दुखी रहते थे। नारदजी के कहे हुए समय के याद आते ही उनके नेत्रों से आँसुओं की धार बह चलती थी। वह सोचते थे, जब सत्यवानजी इस संसार में न रहेंगे, तब सावित्री भी किस तरह रह सकती है। इससे मैं फिर भी संतानहीन हो जाऊँगा।

आज वह तिथि निकल चुकी। राजा अपनी बेटी और दामाद की ख़बर लेने को मुनि द्युमत्सेन के आश्रम में अपने निज के आदमियों-सहित आ गए। आश्रम पर आते ही सब-से पहले राजा ने सत्यवान और सावित्री की कुशल पूछी। अपने पिता को आया देख सावित्री के आनंद का ठिकाना न रहा। वह अपने पिता के चरणों में प्रणाम कर बैठ गई,

और नारदजी के बताए हुए मुहूर्त का पूरा-पूरा वर्णन सुनाने लगी। उस विचित्र घटना को सुनकर सब लोग सावित्री को धन्य-धन्य कहने लगे। अपनी बहू का ऐसा कठिन समय तथा इतना कठिन काम देखकर सास-ससुर दोनो की आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने अपने को भाग्यवान् समझा। वे हाथ उठाकर सावित्री को आशीर्वाद देने लगे। सत्यवान यह हाल सुनते ही अपने मन में बार-बार सावित्री की सराहना करने लगा—"हमारे अहो भाग्य हैं, जिनके कारण परमात्मा ने मुझे ऐसी सुलक्षणा स्त्री दी!" तपोवन-वासियों का तो पूछना ही क्या था! सब लोग सावित्री की बातें सुनकर आनंद में फूल-से उठे। सब मुक्त कंठ से सावित्री की प्रशंसा करने लगे।

इसी समय द्युमत्सेन का मंत्री भी एक शुभ समाचार लेकर आया। अपने पुराने मंत्री को आया देख मुनि ने उन्हें आदर से अपने पास बैठा लिया। फिर कुशल-समाचार पूछने के उपरांत कहा—"मंत्रीजी, आपने मेरी बहुत दिनों में ख़बर ली। कहो, प्रजा के लोगों को किसी तरह का कष्ट तो नहीं है? वे लोग कभी मेरी सुधि करते हैं? ईश्वर की इच्छा से अब मेरी आँखें फिर खुल गई हैं। यह संवाद मेरे हितजनों को सुना देना। सत्यवान का विवाह भी भद्रपति की कन्या

सावित्री के साथ हो गया है। इस समय मेरे दिन गिरे हुए हैं; नहीं तो आप लोगों को उस विवाह में अवश्य बुलाता। आप जाकर कह देना, वे मेरे इस काम के लिये मुझे क्षमा करेंगे।"

मुनि की बात पूरी होते ही मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! भला हम लोगों में क्या शक्ति है, जो आपको क्षमा कर सकें। आप इस तरह कहकर हम लोगों को लज्जित न करें। हम लोग तो सदा आप ही की कृपा चाहते हैं। जिस समय से आप वन में चले आए थे, उसी समय से हम लोगों के दुःखों के दिन भी आ गए थे। नए राजा हम लोगों पर मन-माना अत्याचार करते थे। उनके इस दुष्ट व्यवहार से सारी प्रजा में त्राहि-त्राहि मची थी। सब लोगों ने सलाह कर उस राजा को राज्य से निकाल दिया है, और वे फिर आपको राजा बनाना चाहते हैं। यही शुभ संवाद सुनाने को सब लोगों ने मुझे यहाँ भेजा है। हम आशा करते हैं कि आप अवश्य ही हमारी यह इच्छा पूरी करेंगे।"

यह शुभ संवाद सुनकर मुनि प्रसन्न हुए और उन्होंने मंत्री का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जिस समय मुनियों ने सुना कि द्युमत्सेन का राज्य फिर वापस आ गया है और प्रजा लोग उन्हें फिर राजा बनाना चाहते हैं, उस समय

सब लोगों ने आकर मुनि को अच्छी तरह से स्नान कराया, अच्छे कपड़े आदि पहनाए, एक सुंदर रथ सजाया। रथ पर द्युमत्सेन, उनकी स्त्री, सत्यवान और सावित्री सब बैठकर अपनी पुरानी राजधानी को चले गए। राजा अश्वपति भी प्रसन्न होते हुए अपने घर चले आए।

राजा द्युमत्सेन को आते देख सब नगरनिवासी जमा होकर गाँव के बाहर गए; वहाँ राजा की वंदना की, उनके चरणों में माथा नवाया। स्त्रियाँ रास्ते पर मंगल-कलश रख खड़ी हो गईं, कोकिला के समान सुरीले कंठों से मंगल-गान गाने लगीं। सब लोग एकचित्त होकर सत्यवान के राज्याभिषेक की तैयारी में लग गए। पश्चात् सत्यवान राजा बने और साध्वी सावित्री रानी हुई।

हम भी ईश्वर से बार-बार यही प्रार्थना करते हैं कि हे जगत्पिता! फिर भी मुझे वही समय दिखा। प्रत्येक भारत-महिला को वही बुद्धि दे, जिससे वह अपने चरित्र से भारत का मुँह उज्ज्वल करे। प्रिय पाठको, सावित्री और सत्यवान ने राजा बनकर अपनी प्रजा को पुत्र के समान पालन किया और अंत में अपने पुत्रों को, अपने ही सामने, युवराज बनाकर स्वर्ग-धाम की राह ली।

महिला-माला की कुछ मनोहर मणियाँ

[संपादिका, श्रीमती कृष्णकुमारी]

भारत की विदुषी नारियाँ

इसमें कोई ५० विदुषी नारियों के जीवन-चरित लिखे गए हैं, जिनका परिचय पाकर स्त्रियाँ गौरव प्राप्त कर सकती हैं। कवर पर सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत काशिनाथ-गणेश खातू का एक रंगीन चित्र है। छपाई साफ़। काग़ज़ ऐंटिक। द्वितीयावृत्ति। मूल्य ॥)

देवी द्रौपदी

लेखक, कविवर पं० रामचरित उपाध्याय। यह पुस्तक देवी द्रौपदी का जीवन-चरित है। आख्यायिका के ढंग पर लिखा गया है, जिससे इसके पाठ से उपन्यास, प्राचीन इतिहास और जीवन-चरित तीनों के पढ़ने का आनंद आता है। यों तो यह पुस्तक समान रूप से सबके लिये शिक्षा-प्रद है, पर स्त्रियों के लिये यह पुस्तक अमूल्य रत्न । स नवीन संस्करण में कई रंगीन चित्र भी दिए गए हैं। मूल्य ॥)

देवी सती

लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श हिंदी-कोविद। यदि पौराणिक उपाख्यान पर एक मुसलमान-लेखक का चमत्कार देखना हो, तो इसे पढ़िए। कितने ही लेखकों ने देवी सती का चरित्र-चित्रण किया , लेकिन ज़हूरबख़्शजी की क़लम में, शैली में और ढंग में कुछ अजीब ही वस्तु है। एक बार अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

वनिता-विलास

लेखक, साहित्य-महारथी पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। इसमें देशी और विदेशी स्त्रियों की शिक्षाप्रद और मनोरंजक जीवनियों का संग्रह

है। द्विवेदीजी की भाषा आदि के संबंध में कुछ लिखने की आवश्यकता ही नहीं। प्रत्येक गृहिणी को इसे पढ़कर इससे शिक्षा लेनी चाहिए। मूल्य ।॥)

देवी पार्वती

लेखक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक मुं० ज़हूरबख़्श 'हिंदी-कोविद'। इसमें जगज्जननी देवी पार्वती का जन्म, विवाह-संबंधी नारद की भविष्यवाणी, पार्वतीजी की तपस्या, शिवजी की आराधना, शिवजी का प्रसन्न होना, उनका विवाह, पार्वतीजी का हठात् अपने मैके जाना, वहाँ उनका अनादर, स्वामी कार्त्तिकेय का जन्म, ताड़कासुर-वध आदि सभी एक-से-एक रोचक, ज्ञातव्य और मनोरंजक बातें बड़ी सुंदर, सरल और सुबोध भाषा में लिखी गई हैं। बाल, वृद्ध और नारी सभी बड़े चाव से इसे पढ़ और समझ सकते हैं। अनेक रंगीन और सादे चित्रों ने तो इसकी शोभा और भी बढ़ा दी है। मूल्य १), सजिल्द १॥)

नल-दमयंती

लेखक, मुंशी ज़हूरबख़्श। इसे पढ़कर बच्चे जान जायँगे कि जुआ खेलने का फल कैसा बुरा होता है, और सती की रक्षा भगवान् किस प्रकार करते हैं इत्यादि। कथानक में नवीनता, शैली में रोचकता, भाषा में मिठास है। मूल्य ।॥=)

पत्रांजलि

स्त्री-पाठ्य पुस्तकों के प्रसिद्ध लेखक श्रीसतीशचंद्र चक्रवर्ती के बँगला 'स्वामी-स्त्रीर-पत्र' का हिंदी-रूपांतर। इसकी रचना पंडित कात्यायनीदत्त त्रिवेदी ने की है। हमारी राय है कि प्रत्येक पढ़ी-लिखी नव विवाहिता स्त्री इस पुस्तक को अवश्य पढ़े, और इसके अमृतमय उपदेशों से लाभ उठावे। अवश्य मँगाइए। कवर पर ख्यातनामा चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा का अंकित एक चित्र भी है। तृतीयावृत्ति। मूल्य ॥)